गुजराती साहित्य का
इतिहास

गुजराती साहित्य का इतिहास

लेखक

गिरधरप्रसाद शर्मा एम. ए., एस. टी. सी

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग

भारतीय विद्याभवन महाविद्यालय

चौपाटी, बम्बई—७

प्रकाशन-विभाग

गया प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा

प्रकाशक :

प्रकाशन-विभाग
गयाप्रसाद एण्ड संस,
बाँके विलास, सिटी स्टेशन रोड, आगरा

मुख्य विक्रय केन्द्र :

गयाप्रसाद एण्ड सन्स, हॉस्पिटल रोड, आगरा
ऑरियण्टल पब्लिशर्स, परेड, कानपुर
श्री अलमोड़ा बुक डिपो, गांधी मार्ग, अलमोड़ा
पॉपुलर बुक डिपो, चौड़ा रास्ता, जयपुर
लॉयल बुक डिपो, पाटनकर बाजार, ग्वालियर
कैलाश पुस्तक सदन, हमीदिया रोड, भोपाल

पुस्तक का मूल्य :

५ रुपये

पुस्तक का संस्करण :

जुलाई १, १९६२

मुद्रक :

जगदीशप्रसाद, एम० ए०
एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा

निवेदन

जब से उत्तर भारत के कुछ विश्वविद्यालयों में गुजराती की शिक्षा का विधान हुआ है तब से हिन्दी में उसके साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास की आवश्यकता का अनुभव विद्यार्थी और प्राध्यापक दोनों कर रहे हैं। इस बात को ध्यान में रखकर इस पुस्तक में गुजराती साहित्य के उद्भव और विकास का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। पुस्तक को संक्षिप्त रूप देते समय कुछ कवियों का नाम भले ही छूट गया हो लेकिन गुजराती साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ नहीं छूटी हैं। इस पुस्तक में विस्तृत गुजराती साहित्य की संक्षिप्त मीमांसा प्रस्तुत करने का प्रयास है।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे सबसे अधिक सहयोग गुजराती के योग्य प्राध्यापक श्री **भूपेन्द्र गणपतिशंकर उपाध्याय** से प्राप्त हुआ है। भिन्न-भिन्न युगों में गुजराती साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन, महाकवियों और उनके काव्य-ग्रन्थों की समीक्षा तो उन्हीं के सहयोग का फल है। अतः मैं माननीय उपाध्यायजी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और गुजराती के उन विद्वान समीक्षकों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी पुस्तकों से सहायता लेकर यह पुस्तक लिखी गई है।

गिरिधरप्रसाद शर्मा

विषय-सूची

: १ :

गुजरात और गुजराती

भौगोलिक विचित्रता, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं के द्वारा प्रभावित सांस्कृतिक विशेषता आदि ही कुछ ऐसे तत्त्व हैं जिनके द्वारा किसी देश के साहित्य को व्यक्तित्व प्राप्त होता है। गुजरात का अपना व्यक्तित्व है और उसके साहित्य का भी। यह बड़ा ही रंगीला प्रदेश है। व्यक्ति सुकोमल और सरस है, साहित्य सुमधुर और लचित।

मध्य एशिया से आने वाली जातियों में शक और गुर्जर भी थे। इन गुर्जरों की राजधानी मालवा में भिन्नमाल (श्रीमाल) थी। वहाँ से कुछ गुर्जर दसवीं शताब्दी में पाटण में आकर बस गए। महाराज सिद्धराज जयसिंह (१०९४-११४३) के समय में गुजरात की बहुमुखी शक्ति का विकास हुआ और तभी से इस प्रदेश के लिए 'गुर्जर मंडल,' 'गुर्जर भूमि,' 'गुर्जर देश' आदि नाम प्रयुक्त होने लगे। गुजरात के इस सबसे अधिक शक्तिशाली शासक ने न केवल उत्तरी तथा दक्षिणी गुजरात को बल्कि सौराष्ट्र, कच्छ तथा मालवा को भी एक झंडे के नीचे किया। कुमारपाल (११४३-७४) भी अपने पूर्वजों की नीति पर चलता रहा और गुजरात की शक्ति का विकास करता रहा। उसकी मृत्यु के चार वर्ष बाद उसकी विधवा रानी नैकादेवी और नाबालिग पुत्र मूलराज द्वितीय ने गोर के मुइजुद्दीन मुहम्मद को बुरी तरह से पराजित किया था। जैन साधुओं ने इस अद्वितीय वीर राजकुमार की शक्ति तथा युद्ध कौशल के गीत गाए है। लेकिन इस युग के सबसे प्रतिभाशाली आचार्य हेमचन्द्र ही हुए हैं, जिन्हें उनके जीवनकाल में ही 'कलिकाल-सर्वज्ञ' कहा गया था।

सोलंकियों के पश्चात् गुजरात पर बघेलों का राज हुआ। इनके राज में इस शक्ति सम्पन्न प्रदेश की अवनति होने लगी। अन्त में अलाउद्दीन खिलजी ने कर्ण बघेला को पराजित करके इस भू-भाग पर इस्लामी राज स्थापित किया। यूरोप की जातियों में सबसे पहले पुर्तगालियों ने गुजरात के कुछ भाग पर कब्जा किया। २० दिसम्बर १९६१ को पुर्तगाली शासन का अन्त कर दिया गया। तत्पश्चात् सूरत में अंग्रेजों की कोठी बनी और फिर तो भारत के अन्य प्रदेशों के साथ गुजरात भी अंग्रेजों के

अधिकार में आगया। अँग्रेजी शासन का अन्त १५ अगस्त १९४७ को कर दिया गया। अंग्रेजी शासन काल में गुजरात में करीब करीब तीन सौ पचास छोटे-बड़े रजवाड़े थे। लेकिन इस युग के सबसे महान राजनीतिज्ञ नेता स्व० सरदार वल्लभभाई पटेल ने इन रजवाड़ों को समाप्त करके गुजरात की उपजाऊ भूमि के सपूतों—किसानों को मुक्त किया। १ अप्रेल १९६० से गुजरात महाराष्ट्र से अलग होकर भारत का एक पृथक् राज्य है।

गुजरात के पश्चिम में सागर, उत्तर में कच्छ और राजस्थान का मरुस्थल, दक्षिण और पूर्व में अरावली पर्वत, मालवा का पठार, विंध्याचल, सतपुड़ा तथा जंगल हैं। थल के द्वारा बम्बई से गुजरात का संबंध तो आधुनिक युग की बात है इसके पूर्व तो गुजराती केवल जलमार्ग से ही बम्बई पहुँच सकते थे। इस प्रकार हर तरफ से सुरक्षित गुजरात की उर्वरा भूमि ने कोमल, आराम-तलब, स्नेही, सुरुचिपूर्ण नारी और पुरुषों को जन्म दिया है।

सच बात तो यह है कि गुजरात का व्यापार जल मार्ग से ही होता आ रहा है। यहाँ के कुछ बन्दरगाह तो इतिहास के उषा काल में ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके थे। ऋग्वेद के युग में द्वारका (कुशस्थली) एक मुख्य बंदरगाह था और जातकों में भड़ोच (भृगु-कच्छ) का वर्णन है। भड़ोच बन्दरगाह के द्वारा ई० पू० ६०० से ई० १७०० तक दुनिया से भारत का व्यापार होता रहा। चालुक्य और बघेला राजाओं के समय में घोघा और खम्भात के बन्दरगाह काफी उन्नत दशा में थे। खम्भात के व्यापारियों को पुर्तगाली अपना सबसे बड़ा प्रतिद्वन्दी मानते थे। कहा जाता है कि अंग्रेजों के आने के पूर्व गुजरात का ध्वज ८४ बन्दरगाहों पर फहराता था। उनमें से तेईस तो पश्चिमी तट पर थे और बाकी विदेशी भूमि पर थे। कुछ वर्ष पहले तक बम्बई का अधिकतर व्यापार गुजरातियों के ही हाथ में था। आज विश्व के सभी बड़े-बड़े शहरों में गुजराती व्यापारी रहते हैं। दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका में तो गुजरातियों के स्कूल तथा कालेज भी हैं। वहाँ पर काफी संख्या में गुजराती बसे हुए हैं।

युगों से इन तमाम कार्य-व्यापारों से परिचित गुजरात में एक सम्पन्न मध्यम-वर्ग का विकास हुआ है जिसने समाज और राजनीति का नेतृत्व किया और उदार परम्पराओं को जन्म दिया है। इसके परिणामस्वरूप गुजराती काफी अनुभवी और उदार दृष्टिकोण वाले हैं। विदेशी आए और सब में मिल गए। ऊँचा-नीचा समाज एक स्तर पर आता रहा। इसे कोई भी न रोक सका। नारियाँ काफी स्वतन्त्र हैं और विशेषतः दक्षिणी गुजरात में तो नारियाँ पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवन का भार सम्हालती है और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करती हैं।

गुजराती भाषा की उत्पत्ति तथा विकास की भी वही कहानी है जो अन्य

भारतीय आर्य भाषाओं की है। सभी विद्वान साहित्य की आदि भाषा देववाणी संस्कृत को ही मानते हैं। बहुत काल तक साहित्य की भाषा तो संस्कृत ही रही किन्तु जनता की बोली बदलती रही। इस जनता की बोली का नाम पड़ा—प्राकृत। इसी प्राकृत भाषा का एक रूप था शौरसेनी प्राकृत और इसी शौरसेनी प्राकृत भाषा से नागर अपभ्रंश का विकास हुआ। आधुनिक गुजराती इसी नागर अपभ्रंश से विकसित हुई जान पड़ती है। ११वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक की भाषा को विद्वानों ने गौर्जर अपभ्रंश नाम दिया है तथा १५वीं से १७वीं शताब्दी तक की भाषा को प्राचीन गुजराती कहा है और इसके बाद अर्वाचीन गुजराती भाषा का विकास हुआ है। संस्कृत-व्याकरण के आधार पर गुजराती भाषा को व्यवस्थित बनाया गया है। संस्कृत, प्राकृत के अलावा अरबी, फारसी, अंग्रेजी, पोर्चगीज तथा फ्रेंच भाषा के शब्द भी गुजराती में आए हैं।

: २ :

प्राचीन गुर्जर साहित्य

[सन् १००० ई० से १५०० ई० तक]

एक : सामान्य परिचय

अर्वाचीन खोजों के पूर्व लोगों का विश्वास था कि नरसिंह मेहता ही गुजराती साहित्य के आदि कवि थे। इस विश्वास का आधार तत्कालीन कवियों में नरसिंह मेहता की श्रेष्ठता, लोकप्रियता तथा जन-मन को प्रभावित करने वाले उनके सरस पदों की क्षमता है। किन्तु जैन ग्रन्थों की छान-बीन के आधार पर आज के विद्वानों को सप्रमाण मालूम हुआ है कि नरसिंह मेहता के तीन-चार सौ वर्ष पूर्व ही से गुजराती साहित्य का आरम्भ हो चुका था। हाँ, यह सच है कि इस युग का जैनेतर साहित्य नगण्य है और जैन साहित्य भी बहुत कुछ साम्प्रदायिक है।

बात यह है कि उस समय मुसलमानों का आक्रमण हो रहा था। चारों तरफ अशान्ति और अव्यवस्था फैली हुई थी। ऐसे प्रक्षुब्ध वातावरण में शुद्ध साहित्य का सर्जन नहीं हो सकता था और यदि हुआ भी होगा तो उस समय के तूफान में कहाँ उड़ गया है कुछ पता नहीं चलता। आज तो केवल हेमचन्द्राचार्य द्वारा उद्धृत कुछ दोहे और समय-समय पर अपने रूप बदलते लोकगीत ही प्राप्त हैं। किन्तु उस समय के संघर्षों से दूर रहने वाले, एकान्त-सेवी जैन मुनियों के उपाश्रय में साहित्य का दीपक जल रहा था। माना कि उस दीपक का प्रकाश सीमित था, जन मन से दूर था फिर भी गुजराती भाषा के विकास के अध्ययन की दृष्टि से जैन साहित्य का अपना महत्त्व है।

संक्षेप में इस युग के साहित्य की प्रमुख विशेषता और उपयोगिता निम्नलिखित है :—

(१) जैन कवियों और आचार्यों की रचनाएँ मूल रूप में और प्रामाणिक रूप में सुरक्षित हैं। इसलिए उनमें उस काल की भाषागत अवस्थाओं और प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। लोक भाषा के काव्य रूपों को समझने में सहायता मिलती है।

(२) हेमचन्द्र के व्याकरण में तथा अन्य ग्रन्थों में जो दोहे संगृहीत हैं वे कई प्रकार के हैं—निर्गुण प्रधान और धार्मिक उपदेश मूलक दोहे, शृंगारी दोहे, नीति-विषयक दोहे, वीर रस के दोहे।

(३) हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में संगृहीत दोहों और चरित-काव्यों के अध्ययन से गुजराती साहित्य के विकास को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है।

(४) इस युग के कवियों की रास, फागु और बारहमासी आदि रचनायें पर-वर्ती गुजराती साहित्य के काव्य-रूपों के समझने में सहायक हैं।

(५) जैन कवि निवृत्ति मार्गी मुनि थे, ज्ञानी और धर्म-प्रचारक थे। उन्होंने साहित्य को धर्म-प्रचार का साधन बनाया। सरल रूप में जैन धर्म के सिद्धान्तों को जनता के सामने प्रस्तुत किया। अतः इस युग के साहित्य का धार्मिक तथा नैतिक महत्त्व है।

दो : हेमचन्द्राचार्य

हेमचन्द्राचार्य (१०९३—११७८ ई०)—आप इस युग के सबसे महान प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य थे। ज्ञान और आध्यात्मिक सिद्धियों के कारण आपको कलिकाल-सर्वज्ञ कहा गया है। महाराज सिद्धराज सोलंकी (१०९४—११४३ ई०) ने गुजरात में शिक्षा-प्रसार के उद्देश्य से हेमचन्द्राचार्य को अपने दरबार में आश्रय देकर सम्मानित किया था। उन्हीं के अनुरोध पर हेमचन्द्र ने **'सिद्ध हेमशब्दानुशासन'** नामक एक परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा के व्याकरण की रचना की। इस ग्रन्थ में उदाहरण के के रूप में उद्धृत दोहे तत्कालीन लोक साहित्य का परिचय देते है। आपके दूसरे ग्रन्थ का नाम **'काव्यानुशासन'** है जो मम्मट के काव्यप्रकाश के अनुसरण पर लिखा गया था। आपका तीसरा ग्रन्थ **'द्वयाश्रय'** है। इसमें कुमारपाल (११४३—७४ ई०) तक के चालुक्य राजाओं की प्रशस्ति भी है और व्याकरण के नियमों के उदाहरण भी। इन्ही दोनों बातों के चमत्कारपूर्ण मेल के कारण इस ग्रन्थ का नाम 'द्वयाश्रय' रखा गया। आपका चौथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ **'छन्दोनुशासन'** है। इसमें अपभ्रंश भाषा के प्रचलित छन्दों का लक्षण बताया है और उदाहरण के रूप में उच्चकोटि के मुक्तक काव्य को प्रस्तुत किया है। यह उद्धृत काव्य स्वरचित भी हो सकता है और उस समय में प्रचलित लोक साहित्य से संगृहीत भी।

गुजराती भाषा के अध्ययन की दृष्टि से और गुजरात के इतिहास की जान-कारी के लिए श्री हेमचन्द्राचार्य के उपर्युक्त ग्रन्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक बोलियों की माता, अपभ्रंश भाषा का मूलभूत स्वरूप 'छन्दोनुशासन' और 'प्राकृत व्याकरण' आदि ग्रन्थों में सुरक्षित है।

सर्वप्रथम हेमचन्द्र की ही कृतियों में गुजरात का राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यक्तित्व प्रकाशित होता है। यद्यपि इस युग में और भी कई ग्रन्थों की रचना हुई किन्तु भाषा की दृष्टि से इनकी गणना इस इतिहास में करना उचित नहीं है। इस युग के शुद्ध काव्य का कुछ उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

(क) लइ बप्पुल पिउ दुद्धला, कउ अम्हाणं छासि।
पुत्तहु मत्थें सवउं जइ दहिं जमिवि जणिअ आसि॥

[हे बापुरा, दूध पी। हमारे यहाँ छाछ कहाँ से मिलेगी? पुत्र के सिर पर हाथ रखकर कहती हूँ कि मैंने जीवन भर दही का दर्शन नहीं किया है।]

(ख) बाली झुम्भक्क भोलि उल्लसिअ-णिअंसणी
गहणु सिणिवि णिक्कन्ता णिदाए भेंभली।
राहु वि तीय मुहु जोअइ पुणु जोअइ गअणु
भुल्लल्लिओ ण हु आणइ दोण्ह विचन्दु कवणु।

[निष्कपट उल्लसित निवसना बाला ग्रहण सुनकर कुछ उनींदी ही बाहर निकली। राहु भी उसका मुख देखकर फिर आसमान की ओर देखने लगा और सोचने लगा कि दोनों में सच्चा चन्द्र कौन है?]

(ग) जहिं कप्पिज्जइ सरिण सरु, छिज्जइ खग्गिण खग्ग।
तहिं ते हइ भड-घड-निवहि कन्तु पयासइ मग्गु॥

[जहाँ बाण से बाण काटा जाता है, तलवार से तलवार बजती है वहाँ पर उस सुभट-घटा-मध्य से मेरा प्रिय मार्ग प्रकाशित करता जा रहा है।]

(घ) वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहस त्ति।
अद्ध वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति॥

[प्रिय परदेश में है। वियोग में दुःखी नायिका बहुत दुबली हो गई है। कौआ बोलता है। नायिका झुँझलाकर उसे उड़ाने के लिए ढेला उठाने लगती है। दुबलेपन के कारण आधी चूड़ियाँ जमीन पर गिर पड़ती हैं। इसी बीच में पति आता हुआ दिखाई पड़ता है। नायिका इतनी मोटी हो जाती है कि आधी चूड़ियाँ फूट जाती हैं।]

तीन : काव्य के विविध रूप

(१) रास—रास या रासो प्रासयुक्त पद्य में रचित धर्म विषयक, कथात्मक, चरितात्मक, वर्णनात्मक गेय काव्य है। काव्य की यह धारा संस्कृत के महाकाव्यों से निकलकर समय-समय पर जनता की रुचि के अनुसार अल्प परिवर्तन को स्वीकार करती हुई मध्य युग के आख्यान काव्य के रूप में बदल जाती है। संस्कृत साहित्य में रास शब्द का प्रयोग संगीतमय समूह नृत्य के लिए होता था। इसमें अभिनय, नृत्य,

संगीत, काव्य, धर्म आदि का समावेश रहता था। रासक एक छन्द का भी नाम है।

अपभ्रंश भाषा के धर्म-उपदेश-प्रधान, रास, चर्चरी काल स्वरूप (कुलक) आदि काव्य रूपों का प्राचीन गुजराती साहित्य में विकास हुआ। जैन कवियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए रास की रचना की। धार्मिक उपदेशों की प्रधानता होने के कारण इसमें से संगीत, नृत्य आदि का ह्रास होता गया। यद्यपि इस युग में सैकड़ों रास लिखे गए हैं किन्तु साहित्य की दृष्टि से विचार करने पर अधिकांश उपदेश, प्रचार एवं अनुकरण प्रधान होने के कारण महत्वहीन हैं। अब कुछ कवियों और उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना प्रासंगिक होगा।

शालिभद्र सूरि (११८५ ई०) की 'भरतेश्वर बाहुबली रास' काल की दृष्टि से पहली रचना मानी जाती है। इसमें आदिनाथ ऋषभदेव के बड़े पुत्र भरत और छोटे पुत्र बाहुबलि के बीच राज्य-प्राप्ति के लिए हुए संघर्ष का वर्णन है। वीर रस की प्रधानता, अलंकार का चमत्कार और ओजपूर्ण शैली के कारण यह काव्य बहुत ही रोचक है। डिंगल भाषा का प्रभाव भी स्पष्ट झलकता है। चौपाई, सोरठा, रोला और हरिगीत छन्द का प्रयोग हुआ है।

धर्म (१२१० ई०) की दो रचनाएँ हैं—(१) जम्बू स्वामी चरित्र और (२) स्थूलिभद्र रास। इनमें स्थूलिभद्र रास एक प्रौढ़ रचना मानी जाती है।

विजय सेन सूरि (१२३१ ई०) महामात्य वस्तुपाल के धर्माचार्य थे। आपने 'रेवन्तगिरि रास' की रचना की। इस काव्य में सौराष्ट्र के गिरिनार पर्वत के प्राकृतिक सौन्दर्य और जैन मंदिर के जीर्णोद्धार का मधुर वर्णन है।

अम्ब देव सूरि (१३१५ ई०) ने 'समरा रासु' की रचना की। काव्य का नायक समरसिंह सरदार अलफखान का मित्र था। इसने शत्रुंजय पर्वत पर ऋषभदेव की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की।

(२) **फागु**—फल्गु अर्थात् वसंत ऋतु में गाया जाने वाला रास जैसा ही काव्य का एक रूप है। इसमें अलंकार के चमत्कार-प्रदर्शन का प्रयत्न अधिक रहता है। विशेषतः यमक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग अधिक किया गया है। प्रेम और शृंगार के उद्दीपन के रूप में वसंत की सुषमा का चित्रण रहता है। जैनाचार्यों ने इस प्रचलित और लोकप्रिय काव्य के रूप का प्रयोग अपने धर्म के प्रचार के लिए किया। प्रारंभ में किसी सम्पन्न युवक के प्रेम का वर्णन करते हैं किन्तु अंत में शील, त्याग और तप की विजय दिखाते हैं तथा जैन धर्म की महत्ता को स्थापित करते हैं। धर्म को ही लक्ष्य मानकर चलने वाले इन कवियों ने वसंत की सुषमा का भी कम ही वर्णन किया है। सैकड़ों फागु काव्य-ग्रन्थों में केवल **'वसंत विलास'** ही साम्प्रदायिकता

से रहित है। वसंत विलास गुर्जर-साहित्य के आकाश का चन्द्र है। अब कुछ कवियों की प्रमुख फागु-कृतियों का परिचय नीचे दिया जाता है।

जिन पद्मसूरि (१३१६) कृत 'सिरि थूलिभद्द फागु' (श्री स्थूलिभद्र फागु) दोहरा और रोला वृत्त में रचित सर्व प्रथम फागु-ऋतु काव्य है। इसमें वर्षा ऋतु का वर्णन है, वसन्त का नहीं। कोशा नाम की एक वेश्या स्थूलिभद्र पर आसक्त हो जाती है। किन्तु स्थूलिभद्र संयम और त्याग के बल से अपनी काम-वासना पर विजय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार प्रेम-प्रसंग का वर्णन करते हुए अन्त में कवि ने तप और त्याग को विजयी दिखाया है। सांसारिकता और निवृत्ति मार्ग का साथ-साथ वर्णन है।

राजशेखर (१३३७) कृत 'नेमिनाथ फागु' पूर्ण रूप से ऋतु काव्य नहीं है। आरंभ में वसंत का अल्प वर्णन है। कथानक इस प्रकार है—उग्रसेन की पुत्री राजुल देवी के साथ विवाह के लिए नेमिनाथ की बारात आती है। बारातियों के भोजन के लिए पशु हत्या की व्यवस्था देखकर नेमिनाथ के मन में विराग पैदा हो जाता है। वह विवाह स्थल को छोड़ कर वैरागी बन जाता है। इस काव्य में वर-वधू के साज-शृंगार का परम्पराभुक्त वर्णन है। ललित पदावली और काव्य-चमत्कार इस काव्य की अपनी विशेषता है।

स्वतन्त्र फागु—किसी अज्ञात कवि की कृति **'वसंत-विलास'** एक सर्व श्रेष्ठ फागु काव्य है। यह समस्त गुजराती साहित्य की एक अपूर्व रचना है। शैली अत्यन्त मधुर और भावपूर्ण है। अलंकारों की छटा दर्शनीय है। जैन कवियों की नीरस साम्प्रदायिकता से रहित है। इस काव्य में पति-पत्नी के उल्लास भरे, रंग भरे यौवन का निस्संकोच वर्णन है, प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण है। इस युग के धार्मिक आडम्बर से ऊपर उठ कर यह काव्य चल जीवन के उन्मुक्त आनंदोपभोग का संदेश देता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

आंबुला की डाल पर कोयल बोलती है मानो वह मानिनी सखी को पुकार कर कह रही हो—मैं कामदेव का आदेश सुना रही हूँ—

थंभण थिय न पयोहर मोह रचउ म गमारि।
मान रचउ किस्या कारण तारुण दीह बिच्यारि ॥२४॥

अर्थात्—यौवन तो दो-चार दिन का है। फिर मान क्यों? यह पयोधर स्थिर नहीं रहेगा। तब इतना घमंड किस लिए?

वीर सुभट कामदेव का प्रभाव देखिए :—

वीर सुभट कुसुमायुध आयुध शाल अशोक।
किशल जिस्यां असि झबकइं झबकइं विरहणी लोक ।३५।

अर्थात्—कामदेव वीर सुभट है, शाल तथा अशोक उसके आयुध हैं, चमकदार नव किसलय रूपी असि को देखकर विरहिणियाँ भयभीत हो जाती हैं।

कुच बि अमीय कलमा पगि थापगि तणीय अनंग।

तीहचु रापणहारु रे हाम कि धवल भुअंग ।६५।

अर्थात्—कुच अमृत कलश है और कामदेव की अमानत भी। इसीलिए उसकी रक्षा के लिए हार रूपी भुजंग है।

(३) **बारमासो** (बारहमासा)—बारमासा भी रास और फागु की तरह आदि काल में प्रचलित एक काव्य-प्रकार है। इसमें गेयतत्त्व की प्रधानता रहती है। कवित्वपूर्ण शैली में बारहों महीने के प्राकृतिक सौन्दर्य का तथा वियोगिनी नायिका की मनोदशा पर इनके प्रभाव का वर्णन रहता है। विप्रलंभ शृंगार का वर्णन अधिक रहने के कारण कुछ करुण रस भी रहता है। अंत में नायक-नायिका का मिलन दिखाया जाता है। जैन कवियों ने इसका भी सदुपयोग धार्मिक उपदेश के लिए किया। इसे भी साम्प्रदायिक बनाया, जैसे—'नेमिनाथ चतुष्पदिका' में वियोगिनी राजुल की मनोदशा का चित्रण बारहों महीने के प्राकृतिक वर्णन के साथ किया गया है। अंत में नेमिनाथ आते हैं। लेकिन सांसारिक तृप्ति देने के लिए नहीं बल्कि दुखिया राजुल को निवृत्ति मार्ग की ओर ले जाने के लिए। राजुल सानंद दीक्षा लेती है।

(४) **मातृका और कक्को**—ये भी काव्य-प्रकार ही हैं लेकिन हैं कुछ चमत्कारपूर्ण। मातृका की हर पंक्ति क्रमशः स्वर से आरंभ होती है किन्तु कक्को की हर पंक्ति क्रमशः व्यंजन से आरंभ होती है। यही दोनों में अन्तर है। इस प्रकार के काव्य में प्रायः सुन्दर सुभाषित लिखे गए है। किसी-किसी कवि ने कक्को के इस कृत्रिम ढाँचे में धार्मिक कथा भी लिखने का प्रयास किया है।

रूपक-काव्य : प्रबोध चिंतामणि (१४१४ ई)—महान जैन कवि जयशेखर सूरि कृत 'प्रबोध चिंतामणि' इस युग का एक विशिष्ट रूपक काव्य है। पहले कवि ने इसकी रचना संस्कृत में की थी किन्तु बाद में कुछ फेर-फार के साथ जनता के समझने के लिए गुजराती में लिखा। परमहंस राजा चेतना रानी को छोड़कर माया नाम की दूसरी स्त्री के जाल में फँस जाता है। अमात्य मन सारी सत्ता अपने हाथ में ले लेता है। चारों तरफ अव्यवस्था फैल जाती है। अन्त में अमात्य मन का पुत्र विवेक चेतना रानी की सहायता से परमहंस राजा को माया नारी के जाल से मुक्त करता है। यह सांसारिक माया जाल से जीवात्मा की मुक्ति का काव्य है। कवि ने गूढ़ आध्यात्मिक विषय को बड़े ही रोचक ढँग से प्रस्तुत किया है।

गद्य-साहित्य—गद्य-साहित्य का व्यापक प्रसार तो आधुनिक युग की बात

है किन्तु प्राचीन और मध्यकाल में भी गुजराती का कुछ गद्य-साहित्य मिलता है। जैन मुनियों ने अपने मत के प्रचार के लिए गद्य में धर्म कथाओं की रचना की। ईसवी सन् १३५५ में तरुण प्रभु सूरि ने 'प्रतिक्रमण बालावबोध' में जैन धर्म-दर्शन, व्रत, कथा आदि को गद्य के द्वारा समझाने का प्रयास किया था। १३९४ ई० में कुलमंडन गणि ने 'मुग्धावबोध औक्तिक' नामक संस्कृत भाषा का व्याकरण गुजराती भाषा में लिखा था। नियम और उदाहरण गुजराती भाषा के हैं। इससे उस युग के गद्य का कुछ परिचय मिलता है।

इस युग की सबसे प्रौढ़ गद्य-रचना **माणिक्य सुन्दर सूरि** की 'पृथ्वीचन्द्र चरित' (ई० स० १४२२) है। इसमें पैठण के राजा पृथ्वीचन्द्र द्वारा अयोध्या के राजा सोमदेव की कुँवरी रत्नमंजरी को साहस और पराक्रम से वरण करने और फिर पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् एक जैन साधु के उपदेश से प्रभावित होकर पुत्र को गद्दी सौंप कर साधु हो जाने की कथा है। कथा वस्तु तो सादी ही है, किन्तु प्रतिभाशाली लेखक ने इस पर एक सुन्दर, सुदीर्घ गद्य-काव्य लिख डाला। कथा प्रसंग के प्रवाह की परवाह न करके लेखक ने अवसर मिलने पर मनोहर वर्णनों के द्वारा कथा को अलंकृत किया है।

जैनेतर कवि

इस युग में पुरानी गुजराती भाषा में साहित्य का सर्जन तो मुख्य रूप से जैन कवियों ने ही किया है किन्तु इतिहास की दृष्टि से नरसिंह मेहता के पूर्व १५वीं सदी में उल्लेखनीय चार कवियों के विषय में कुछ लिखना यहाँ पर उचित ही है। इन कवियों ने सांसारिक प्रेम और युद्ध विषयक रचनाएँ लिखी हैं।

असाइत रचित 'हंसाउली' (१३६१ ई०) प्राचीनतम जैनेतर गुजराती काव्य है। कथावस्तु लोक साहित्य से ली गई है। इसमें हंसराज और बच्छराज नाम के दो भाइयों के वियोग की कथा है। इस भ्रातृ-प्रेम-पूर्ण काव्य में हास्य, करुण, अद्भुत रस का सुन्दर मेल है। लोकरंजन के लिए असाइत ने ३६० 'वेश' लिखा। इसलिए इसे 'भवाई' का जनक माना जाता है। भवाई स्वांग या नौटंकी की तरह एक लोक नाट्य का प्रकार है।

श्रीधर व्यास कृत 'रणमल्ल छंद' (१३९९ ई०) ७० कड़ियों में लिखा गया छोटा-सा वीर रस प्रधान ऐतिहासिक खंड काव्य है। कवि ने बड़े गर्व से इडर के रणमल्ल राठौर और पाटन के सुल्तान के युद्ध का वर्णन आलंकारिक भाषा में किया है। राजपूतों के पराक्रम और मुसलमानों की पराजय का सोल्लास वर्णन है।

कवि **भीम** कृत 'सदयवत्स चरित' (१४१० ई०) गुजरात में लोकप्रिय

सदेवंत और सावलिंग के आठ जन्मों के प्रेम-वियोग की कथा को लेकर लिखा गया एक वीर और अद्‌भुत रस प्रधान काव्य है।

मुसलमान कवि मीर अब्दुर्रहमान कृत 'संदेशक रास' (१४२० ई०) मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया एक प्रौढ़ दूत काव्य है। काव्य की नायिका अपने प्रियतम के पास एक पथिक के द्वारा संदेश भेजती है। विप्रलंभ-शृङ्गार से पूर्ण इस रचना में खंभात नगरी का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन है।

इस प्रकार इस अशांत युग का गुर्जर साहित्य एक प्रबल वेगवती सरिता के रूप में नहीं बल्कि छोटे-छोटे नालों के रूप में प्रवाहित होकर जन-मन को सरस बनाता रहा।

: ३ :

मध्यकालीन गुजराती साहित्य

[सन् १५०० ई० से १८५० ई० तक]

एक : सामान्य परिचय

ईस्वी सन् १४११ से लेकर १५३६ ई० तक गुजरात पर अहमदाबाद के सुलतानों का राज था। १५३६ ई० मे अन्तिम सुलतान बहादुरशाह की मृत्यु हो गयी। प्रात भर मे अव्यवस्था फैल गयी। १५७३ ई० मे अकबर ने गुजरात को अपने साम्राज्य में मिला लिया और तब से १७०७ ई० तक यह प्रदेश मुगल साम्राज्य का एक अंग बना रहा। इस राजनीतिक उलट-फेर का गुजराती साहित्य पर कोई प्रभाव नही दिखाई पडता। शासकों मे से कुछ अच्छे भी थे किन्तु हिन्दुओं के लिए सब एक जैसे ही थे—न कोई अच्छा न बुरा। लोग उदास, निराश, प्रगतिहीन और संकीर्ण-दृष्टिकोण वाले हो गये थे। इस अशान्ति और अव्यवस्था के समय में जनता का झुकाव धर्म और दूसरी दुनिया की ओर होता जा रहा था।

मुसलमानों का आक्रमण केवल सैनिक और राजनीतिक आक्रमण ही नहीं था बल्कि एक संगठित धर्म और संस्कृति का भी आक्रमण था। मन्दिर गिराये जाने लगे, मूर्तियाँ तोड़ी जाने लगी। हिन्दू धर्म, संस्कृति और समाज को एक अभूतपूर्व संगठित धर्म मत का सामना करना पडा। इस महान चुनौती का सामना करने के लिए तथा हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए आचार्यों ने प्राचीन महाकाव्यों और पुराणो का आश्रय लिया। कवियों ने इन प्राचीन धर्मग्रन्थों के संदेश को जनता की बोली में सुनाना प्रारंभ किया। गौरवपूर्ण अतीत फिर से जीवित हो उठा। भागवत की प्रेमलक्षणा भक्ति ने जन-मन की निराशा और उदासीनता को दूर किया। धर्म ज्ञान का नही बल्कि भावावेश का विषय बन गया।

कहा जाता है कि ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में वृष्णी जाति के वासुदेव ने भागवत धर्म की स्थापना की। कालान्तर में महाभारतीय नारायणी धर्म ने इसे प्रभावित किया और फिर इसमें आभीर जाति की गोपी-कृष्ण-लीला का मेल हुआ।

इस प्रकार भागवत धर्म का स्वरूप बहुत कुछ बदल गया। मध्ययुग में श्री रामानुजाचार्य ने कुछ समयानुकूल फरफार करके इसे दर्शन का क्रमबद्ध और सुचिन्तित रूप दिया। श्री निम्बार्काचार्य ने राधा तत्व को जोड़कर इसे और भी रसमय बना दिया।

ईस्वी सन् की सातवीं शताब्दी मे दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति ने बड़ा जोर पकड़ा। इसके पुरस्कर्ता आलवार भक्त कहे जाते हैं। इनकी संख्या बारह थी। इनमें अन्दाल नाम की एक महिला भी थी। इन्ही आलवार भक्तों की परम्परा में प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। इस सद्वंश जात आचार्य ने कथित नीच जातियों में प्रचलित ऐकान्तिक भक्ति धर्म को बहुमान दिया तथा देशी भाषा में लिखित शठकोप आदि के तिरुवेल्लुअर शास्त्रों को वेद का सम्मान देकर समादर किया। यही आलवारों का भक्तिवाद आगे चलकर आचार्यों का सहारा पाकर सारे भारत में फैल गया।

उत्तर भारत में भक्ति की धारा को प्रवाहित करने का श्रेय दो महान आचार्यों को दिया जाता है। एक थे परम उदार, महागुरु रामानन्द जी—जन्म माघ कृष्ण सप्तमी संवत् १३५६ वि० अर्थात् सन् ईस्वी १२९९। ये लगभग ईसा की १४वीं शताब्दी भर अपने धर्म का प्रचार करते रहे। भक्तमाल के अनुसार इनके १२ शिष्य थे—अनंतानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, भावानंद, पीपा, कबीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती और सुरसरी। इनमें से कई छोटी जाति के थे। मनमौजी भक्त कबीर का प्रभाव गुजरात पर भी पड़ा और कबीर पंथ के कई अनुयायी हुए। सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक (१४६९—१५५५ ई०) रैदास के शिष्य थे। 'गुरुग्रन्थ साहब' में रामानंद और उनके शिष्य रैदास के कुछ पद संगृहीत हैं। महागुरु रामानंद जी में कुछ ऐसी विशेषता अवश्य थी जिसके कारण योग प्रधान भक्तिमार्ग, निर्गुणपंथी भक्ति मार्ग तथा सगुणोपासक भक्ति मार्ग के पुरस्कर्ता भक्तों ने उन्हें अपना गुरु माना है। इस दूरदर्शी और परम उदार महागुरु ने ब्राह्मण और शूद्र—सबके लिए धर्म का द्वार खोल दिया तथा जनता की बोली का सम्मान किया और तभी से आधुनिक भाषाओं के वास्तविक साहित्य का आरम्भ हुआ।

दूसरे आचार्य थे नाना शास्त्रों के निष्णात पंडित महाप्रभु वल्लभाचार्य—जन्म वैशाख कृष्णा एकादशी सं० १५३५ वि० अर्थात् सन् १४७८ ई० (मृत्यु सन् १५३० ई०)। इनका प्रवर्तित मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है। इन्होंने कृष्णभक्ति का प्रचार किया और लीला पक्ष पर बहुत अधिक जोर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस सम्प्रदाय के भक्तों में भगवान के धर्म रक्षक, मर्यादा पुरुषोत्तम, दुष्टदमन रूप तो गौण हो गए और निखिलानन्द संदोह प्रेममय रूप प्रधान हो

गया। हिन्दी के सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवि इसी सम्प्रदाय के भक्त कवि थे। इस सम्प्रदाय का प्रभाव गुजरात पर भी बहुत अधिक पड़ा। महागुरु रामानंद के मर्यादा पुरुषोत्तम राम का शायद ही किसी ने गुणगान किया हो लेकिन गोपी-कृष्ण-लीला का गान तो यहाँ पर नाना रूपों में हुआ।

महाप्रभु बल्लभाचार्य ने गुजरात में अनेकों मंदिरों की स्थापना की और भागवत का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ऐकान्तिक भक्ति का व्यापक रूप से प्रचार किया।

भक्ति-साहित्य की भावधारा को प्रभावित करने वाले जिस एक व्यक्ति का और नाम लिया जाता है वे थे बंगाल के महाप्रभु चैतन्यदेव। इनके अनुयायी भक्तों ने वृन्दावन को अपना साधना-क्षेत्र बनाया था। इन्हीं के एक प्रधान शिष्य नित्यानंद प्रभु की छोटी पत्नी जान्ह्वी देवी के प्रयास से वृन्दावन में श्री कृष्ण की मूर्ति के साथ राधा की मूर्ति रखी गयी और तभी से श्री कृष्ण के साथ राधा की भी पूजा होने लगी। इस प्रकार इस गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय ने भक्ति साहित्य को भावधारा, विचार दर्शन और उपासना पद्धति को प्रभावित किया। उड़ीसा के संस्कृत कवि जयदेव (१२वीं सदी), बंगाल के चंडीदास और मिथिला के विद्यापति—ये तीनों कवि महाप्रभु चैतन्यदेव के प्रिय थे। उनके भक्तों के साथ उन तीनों कवियों के भजन भी पहुँच चुके थे। गुजरात में भक्ति आन्दोलन का केन्द्र भी वृन्दावन ही था। गुजराती साहित्य पर जयदेव के 'गीत गोविन्द' के प्रभाव का पता तो इस बात से ही चल जाता है कि सन् १२९१ ई० में सारंगदेव बघेला के राज्यकालीन एक शिलालेख में मंगलाचरण के रूप में गीत गोविन्द का दशावतार वर्णित श्लोक खुदवाया गया था। लगता है कि महाप्रभु चैतन्यदेव की भाव विह्वल आराधना का प्रभाव गुजरात के भक्तों पर अधिक पड़ा था। कवियों ने गोपी-कृष्ण-लीला का गान किया है। अलौकिक मिलन-विरह का शृंगारिक चित्रण किया है। प्रेम को ही भक्ति मार्ग का मुख्य सूत्र माना। निराश जनता ने इसी प्रेम लक्षणा भक्ति का आश्रय लिया।

भक्ति का एक प्रकार भगवान की कथा का श्रवण भी है। गुजरात में अनेक कथाकार हुए। ये कथाकार जनता को रामायण, महाभारत, पुराण विशेष रूप से भागवत पुराण की कथाओं को गागर पर ताल देकर सुनाते थे। इसीलिए इन कथाकारों को गागरिया भट कहा जाता है। रात के समय गाँव-गाँव में, गली-गली में धार्मिक कथाएँ होती थीं। दुःखी जनता इन कथाओं को सुनकर आनन्द पाती थी। इस प्रकार पुराणों और महाकाव्यों की कथाओं का साधारण जनता में प्रचार हुआ। इन धर्म ग्रन्थों से शक्ति पाकर जनता इस्लाम के प्रसार को रोकने में सफल हुई। मध्यकाल का सर्वश्रेष्ठ साहित्य—आख्यान काव्य, इन्हीं कथाकारों की सृष्टि है।

इन कथाकारों के दो वर्ग थे—एक माण भट या गागरिया भट का, दूसरा पुराणिक का। ये पुराणिक किसी सम्पन्न परिवार में, कुछ श्रेष्ठ व्यक्तियों के बीच में संस्कृत के पुराणों का वाचन करते थे। पुराणिक मूल कथा में न तो अपनी ओर से कुछ मिलाते ही थे और न उसे रोचक बनाने का प्रयास ही करते थे। इस नीरस धार्मिक कथा के श्रोता बड़े-बड़े लोग होते थे और पुराणिकों को दक्षिणा के रूप में अच्छी रकम भी मिलती थी। किन्तु गागरिया भट अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, नारी-पुरुष सबके बीच में किसी झोपड़ी में या किसी घर के ओसारे में या किसी पेड़ के नीचे चबूतरे पर पुराणों की मूल कथाओं में कुछ अपनी तरफ से भी मिलाकर जनता की बोली में अंगुली में पहने छल्ले से तांबे के घड़े (माण) पर ताल देकर सुनाते थे। पुराणों को जीवित और सुरक्षित रखने का श्रेय इन्हीं दोनों वर्गों के कथाकारों को ही दिया जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, राजनीतिक परवशता और सामाजिक संकीर्णता के कारण सामान्य जनता का जीवन आनन्द रहित हो चुका था। यह सुन्दर संसार दुःख का मूल बन गया। संसार के समस्त सुखों से मुख मोड़कर चलने वालों को लोग महात्मा कहने लगे। श्री शंकराचार्य का प्रभाव तो चला ही आ रहा था। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' का प्रचार भी किसी समय खूब हुआ था। इस युग की परिस्थिति ने योग दिया। निराश जनता का एक वर्ग गा उठा—'प्राणीआ भजी लेने किरतार आतो स्वपनुं छे संसार'। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकाल में कृष्ण-भक्ति-काव्य-धारा के साथ-साथ ज्ञान-वैराग्य की काव्य-धारा भी प्रवाहित होती रही। हाँ, इतना सच है कि हृदयपक्ष-शून्य होने के कारण इस दूसरी धारा—ज्ञान वैराग्य-काव्य का कुछ विशेष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है। आखा भक्त इस वर्ग का प्रतिनिधि कवि था।

भक्ति एवं ज्ञान-वैराग्य-काव्य तथा आख्यान काव्य के अलावा साहित्य की एक तीसरी धारा भी थी जिसे **'पद्यवार्ता साहित्य'** कहते हैं। इन वार्ताओं का विषय धर्म न होकर यह संसार था। ये पद्य-वार्ताएँ कल्पनाप्रवण साहसपूर्ण घटनाओं से युक्त, अद्भुत रस प्रधान, लोकरंजन तथा व्यवहार का बोध कराने वाली होती थीं।

सारांश यह कि पद्य-वार्ता साहित्य को छोड़कर मध्य काल का सम्पूर्ण गुजराती साहित्य धर्म-प्रधान साहित्य है। इस धर्म प्रधान साहित्य की तीन धाराएँ हैं—(१) भक्ति काव्य (२) ज्ञान वैराग्य काव्य (३) आख्यान काव्य।

दो : भक्ति काव्य

नरसिंह मेहता (सन् १४८४—१५५० ई०)—इनका जन्म जूनागढ़ के पास

तलाजा ग्राम में वड़नगरा नागर ब्राह्मण कुल मे हुआ था। पिता का नाम कृष्णदास और माता का नाम दयाकुँवर था। बचपन में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था। तब से इनका पालन-पोषण इनके बड़े भाई करने लगे। पढ़ने में तथा अन्य सासारिक काम-काज में इनका मन नही लगता था। साधुओं की संगत में घूमा करते थे। सगाई हुई लेकिन टूट गयी। ऐसे मे विवाह कौन करे ? किन्तु १७ वर्ष की अवस्था में मानिकबाई के साथ इनका विवाह हुआ। दो बच्चों के पिता भी बने—पुत्री कुँवरबाई और पुत्र सामल।

इनकी भाभी व्यंग्य बाण चलाने मे बड़ी निपुण थी। एक दिन इनके घुमक्कड़ स्वभाव को लक्ष्य करके ताना मारा। बात लग गई, घर छोड़कर निकल पड़े। महादेव के एक अपूज मन्दिर में सात दिन तक निराहार आराधना करते रहे। भोले शंकर प्रसन्न हुए। द्वारिका में गोपी-कृष्ण की रासलीला का दर्शन कराया और तभी से ये प्रेममूर्ति भगवान श्री कृष्ण के अनन्य भक्त बन गए तथा अपने सरस पदों से जनता को रसमग्न करते रहे।

इनके विषय में अनेक दन्तकथाएं प्रचलित है। कहा जाता है कि एक बार जूनागढ़ के राजा ने इनकी कृष्ण-भक्ति की परीक्षा लेनी चाही। इन्हे बुलाया और सबेरे से पूर्व कृष्ण से हार प्राप्त करने के लिए कहा। नरसिंह रात भर भगवान की आराधना करते रहे और हार प्राप्त किया। ढेड़-भंगी के साथ कीर्तन-भजन करने के कारण कट्टरपंथी नागर अप्रसन्न हो गए। इन्हे जाति से बाहर निकाल दिया। एक भोज के अवसर पर इन्हे घर से बाहर बैठाया गया। भोजन के समय लोगों ने देखा कि हर नागर की बगल में एक ढेड़-भंगी बैठा है और जब नरसिंह को फिर से जाति में ले लिया तो वहाँ कोई भी ढेड़-भंगी नहीं दिखाई पड़ा। और भी कुछ कथाएँ प्रचलित हैं। भजन-कीर्तन में व्यस्त नरसिह ने धन कमाने की ओर कभी ध्यान ही नही दिया। लेकिन पैसे की जरूरत तो पड़ती ही है। कहते हैं कि पितृ-श्राद्ध, पुत्र-विवाह और पुत्री के सीमंत संस्कार (सीमंतोन्नयन) के अवसर पर भगवान कृष्ण ने बड़े ही चमत्कारपूर्ण ढंग से इनकी सहायता की थी। एक बार कृष्ण ने इनकी हुंडी भी सकारी थी। प्रसिद्ध आख्यानकार प्रेमानंद ने इन घटनाओं के आधार पर सुन्दर आख्यान लिखे है। गुजरात के घर-घर में ये कथाएँ प्रचलित है।

निर्धनता और स्वजनों के व्यंग्यबाण से ऊबकर इस भक्तश्रेष्ठ ने भगवान से प्रार्थना की—'निरधन ने वली जात नागरी, हरि न आपीश अवतार रे। (गरीबी और नागर जाति में जन्म कभी न दीजिए)। लेकिन जाति-पाँति से ऊपर उठकर ये हमेशा यही कहते रहे—

'कुल तजशे ने हरिने भजशे, सहेशे संसारनु सहेणुं रे ;

भणे नरसैयो हरि तेने मलशे, बीजी वाते वोहणुं रे।

(महेणु—ताना, बीजी—दूसरी, वोहणुं—व्यर्थ)

'हारमाल,' सामलशानो विवाह, गोविन्दगमन, सुरत-संग्राम, सुदामाचरित, रास सहस्र पदी, श्रृङ्गार माला, बाल लीला, दानलीला आदि विषयों पर असंख्य पदों के रचयिता नरसिंह मेहता ही कहे जाते हैं। इनमें से 'हारमाला' और 'सामल-शानो विवाह' का सम्बन्ध स्वयं कवि के जीवन से है अन्य भगवान कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित हैं।

नरसिंह मेहता आत्म-लक्षी (Subjective) कवि थे। अपने मन की मौज के अनुसार अपने भक्तों के बीच में गाते रहते थे। भक्तगण इनके पदों को लिखकर जनता में सुनाया करते थे। जनता में प्रचलित इनके पदों की भाषा समय-समय पर अपना रूप बदलती रही है। अतः इनके पदों की आज की भाषा मूल भाषा नहीं कही जा सकती है।

महाप्रभु चैतन्य की तरह नरसिंह भी गोपी की तरह नाचते, गाते थे और कृष्ण को प्रेमी मान कर आराधना करते थे अर्थात् उपासना 'माधुर्य भाव' की थी।.........इसलिए इनके पदों में मिलन की उत्कंठा और वियोग के दुःख की झलक है। यथा—

'वांसलडी वाई मारे वहाले, मंदिरमाँ न रहेवाय रे;
व्याकुल थई ने वहालाने, जोवा शुं करूं उपाय रे।

अर्थात् प्रिय की वंशी बजी, घर में नही रहा जाता। मै बावरी बन गयी हूँ। प्रियतम के दर्शन के लिए मैं क्या करूं ?

कही विरह-व्यथा की झलक है :—

मारो नाथ न बोले बोल, अबोला मरिये रे;
हुं क्यम करी वेठुं वियोग, हवे शुं करिये रे।

[मेरा प्रिय बोलता नही है। उसका मौन मुझे मार रहा है। विरह असह्य हो गया है। अब क्या करूँ ?]

वियोग का अन्त हुआ। मिलन के हर्ष का वर्णन देखिये :—

थेइ-थेइ करे अगणित अंगना, गोपी-गोपी प्रत्ये मोहे कान्ह,
झांझर नेपुर कटि तणी कीकंणी, ताल मृदंग रस एकतान
नाचतां-नाचतां छेल छंदे भर्यो, सप्त स्वर धुन ते गगन चाली
लटके लटका करे, नाथने उर धरे, परस्पर बांहेडी कंठ घाली।

[अंगना=स्त्री; लटका=प्रिय को मुग्ध करने की मस्ती भरी चेष्टा; बांहेडी=बाँह; घाली - डालकर]

संत कबीर की तरह नरसिंह ने कहा है—परब्रह्म की अराधना और तत्व-दर्शन के बिना केवल बाह्याचार से कुछ नहीं होता है—

शुंथयुं स्नान सेवा ने पूजा थकी ? शुं थयुं घेर रही दान दीधे ?
शुंथयु खटदर्शन सेवा थकी ? शुंथयुं वरणना भेद आणे ?
ऐ छे परपंच सहु पेट भरवा तणा आत्मराम परिब्रह्म न जोयो,
भणे नरसैयो तत्व दर्शन विना रत्नचितामणि जन्म खोयो ।
[शुंथयुं=क्या हुआ ?; जोयो=देखा, ज्ञात हुआ]

प्रेम लक्षणा-भक्ति का गान करने वाले, रूपक और दृष्टान्त की सहायता से नीरस तत्त्वज्ञान को भी सरस रूप में परस्तुत करने वाले नरसिंह में अनुभूतिजन्य सरलता तथा दार्शनिक गंभीरता का सुभग समन्वय मिलता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी :—

'नीरखने गगन मां कोण घूमी रह्यो, तेज हुं तेज हुं शब्द बोले
श्यामना चरणमां इच्छुं छुं मरण रे, अहियां कोई नथी कृष्ण तोले
श्याम शोभा घणी बुद्धि ना शके कली अनंत ओच्छत्र मां पंथ भूली
जड़ ने चैतन रस करी जाणवो, पकड़ी प्रेमे सजीवन मूली
जल हल ज्योत उद्योत रवि कोटमां, हेमनी कोर ज्यां नीसरे तोले
सच्चिदानंद आनंद क्रीडा करे, सोनानां पारणां मांही भूले
बत्ती विण, तेल विण, सूत्र विण, जो वली अचल झलके सदा अनल दीवो ;
नेत्र विण निरखवो, रूप विण परखवो, विण जिह्वाए रस सरस पीवो
अकल अविनासी ए नव ज जाये कल्यो, अरध उरधनी माहें म हाले,
नरसैया चो स्वामी सकल व्यापी रह्यो, प्रेमना तंतमां संत झाले ।

अर्थात्–देख, गगन में कौन घूम रहा है। मैं हूँ, मैं हूँ शब्द की ध्वनि गूँज रही है। श्याम के चरण में मरने की इच्छा है। कृष्ण के समान कोई नहीं है। श्याम की शोभा को बुद्धि नहीं समझ पाती क्योंकि वह इस अनंत के उत्सव में भटक जाती है। जड़ चेतन को एक मानिए, अनंत जीवन को प्रेम से पकड़ लो। कोटि सूर्य की ज्योति आ रही है। सुनहली किरणें निकल रही हैं। सच्चिदानंद सोने के पालने में आनंद क्रीड़ा कर रहे हैं। वह अडिग, अचल, अनंत प्रकाश तेल और बाती से रहित है। हमें देखना है किन्तु नेत्र से नहीं, पहचानना है किन्तु रूप के बिना, रस पान करना है किन्तु जिह्वा से नहीं। वह अज्ञात है, अविनाशी है, ऊपर नीचे सर्वत्र उसकी गति है। नरसैया का स्वामी सर्व व्यापक है। संत उस ब्रह्म को प्रेम की डोर से ही पकड़ पाते हैं।

इनका यह पद तो बापू जी के साथ ही सम्पूर्ण भारत का प्रिय बन चुका है :–

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड पराइ जाणे रे ;
पर दुःखे उपकार करे ते, मन अभिमान न आणे रे ;
सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा ते न करे केनी रे ;
वाच काछ मन निश्चल राखे तो, धन्य धन्य जननी तेनी रे ;
सम दृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे ;
जीह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे ;
मोह माया व्यापे नहि तेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे ;
राम नामसुं ताली रे लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे ।
वण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध ने निवार्या रे ;
भणे नरसैयो तेनुं दरसन करतां, कुल इकोतेर तार्या रे ।

सच्चे वैष्णव जन नरसिंह मेहता के लिए भक्ति साधन ही नहीं साध्य भी थी—'हरि नो भक्त तो मुक्ति न मांगे मांगे जन्मो जन्म अवतार रे' ।

मीराबाई—पश्चिमी भारत की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मीराबाई मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री और राव दूदाजी की पौत्री थीं । इनका जन्म सन् १५०० ई० के आस-पास हुआ था । उदयपुर के महाराणा राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ इनका विवाह हुआ था । किन्तु १५१७ ई० में भोजराज का स्वर्गवास हो गया । विधवा मीरा प्रायः मंदिर में जा कर भक्तों के बीच श्री कृष्ण भगवान की मूर्ति के सामने नाचती गाती थी । सन् १५३२ ई० में राणा सांगा के छोटे पुत्र, विक्रम गद्दी पर बैठे । राजकुल विरुद्ध आचरण से मीरा के स्वजन अप्रसन्न रहा करते थे । कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देकर मार डालने का प्रयत्न किया गया । किन्तु भगवत्कृपा से मीरा का बाल भी बाँका न हुआ । घर वालों से अप्रसन्न और दुःखी होकर ये द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में घूम घूम कर भजन गाती थीं । हर जगह इनका देवी जैसा सम्मान होता था । जीवन के अंतिम समय में ये द्वारका में रहीं इसलिये गुजरात में भी लोकप्रिय बन गई । इनके २५० पद गुजरात में प्रचलित है । वहीं पर १५४६ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया था ।

नरसिंह मेहता की भाँति मीरा की भी उपासना 'माधुर्य भाव' की थी अर्थात् अपने इष्टदेव श्री कृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'इसी ढंग की उपासना का प्रचार सूफी भी कर रहे थे अतः उनका संस्कार भी इन पर अवश्य कुछ पड़ा ।' कुछ भी हो मीरा के पदों में अपूर्व भाव-विह्वलता और आत्मसमर्पण का भाव है । इसलिए इनके पद गुजरात और हिंदी भाषी क्षेत्रों में अत्यधिक लोकप्रिय हुए । मीरा का प्रेम निवेदन और विरह-व्याकुलता सहज और साक्षात् संबंधित है । शायद इसीलिए इनके पदों में भगवद्

विरह की पीड़ा का जितना मादक और प्रभावोत्पादक चित्रण मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। इनके रचित चार ग्रन्थ कहे जाते हैं—नरसी जी का मायरा, गीत गोविंद की टीका, राग गोविंद, राग सोरठ के पद।

तीन : आख्यान काव्य

आख्यान का अर्थ है—पूर्ववृत्तोक्तिः आख्यानं। रामायण, महाभारत आदि में दृष्टान्त के रूप में छोटी-छोटी कथाएं हैं। इस युग में इन कथाओं का विस्तार करके स्वतन्त्र आख्यान काव्य का रूप दिया गया। संस्कृत के महाकाव्यों की तरह आख्यान भी मंगलाचरण से आरम्भ होता है। कथा कई सर्गों में विभाजित रहती है जिसे कड़वा कहते हैं। कड़वा (सर्ग) के अन्त में उस कड़वा का सार और दूसरे कड़वा के आरम्भ की सूचना रहती है। इसे वलण और उथलो कहते हैं। अन्त में 'फलश्रुति' (आख्यान सुनने का फल) रहती है। इस प्रकार आख्यान काव्य महाकाव्य से मिलता जुलता काव्य का एक रूप है।

भालण (सन् १४३४-१५१४ ई०)—पाटण में मोढ ब्राह्मण जाति में इनका जन्म हुआ था। ये आरम्भ में शिवभक्त थे किन्तु जीवन के उत्तरार्द्ध में राममक्त बन गये थे। ये गृह त्याग कर सन्यासी बन गए थे और पुरुषोत्तम महाराज के नाम से प्रख्यात हुए। संस्कृत के विद्वान थे और इन्हें आख्यान काव्य का जनक कहा जाता है।

नरसिंह मेहता ने भी आख्यान लिखा है लेकिन पदों में। भालण ने भी पदों का प्रयोग किया है किन्तु बहुत कम। इन्होंने ही आख्यान काव्य को कड़वा-बद्ध किया। बाद के कवियों ने इसका अनुकरण किया। इसीलिए भालण को आख्यान काव्य का जनक कहा जाता है।

भालण लोक प्रचलित कथा को लेकर अपनी प्रतिभा से तथा जनरंजन की दृष्टि से उसे मौलिक रूप देने का प्रयास करते थे। श्रोताओं की रुचि को जगाए रखने के लिए सभी रसों का बारी-बारी से प्रयोग करते थे। वात्सल्य रस के चित्रण में तो भालण अद्वितीय हैं। आख्यान के बीच में गरबियों का भी प्रयोग करते थे जो आज भी मनोहर उर्मि-काव्य के रूप में प्रसिद्ध है।

भालण की कुछ कृतियाँ ब्रजभाषा में भी हैं और अन्य कृतियों में भी ब्रज का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

भालण ने बाण की कादम्बरी का सरल गुजराती में पद्य-बद्ध रूपान्तर किया है। यह इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। मूलकृति के सौन्दर्य का निर्वाह और जटिल कथा को सरल रूप में प्रस्तुत करने में इनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है। इन्होंने असंख्य आख्यानों की रचना की जिनमें से कुछ का नाम यहाँ दिया जाता है—ध्रुवाख्यान (२) नलाख्यान (२) दुर्वासाख्यान, दशमस्कंध आख्यान आदि।

पद्मनाभ—सन् १४५६ ई० में पद्मनाभकृत **'कान्हड़दे प्रबन्ध'** चार खण्डों में विभाजित वीर रस प्रधान ऐतिहासिक काव्य है। पद्मनाभ मारवाड़ में जालोर के चौहान राजा अखेराज के दरबारी कवि थे। वीसलनगर के नागर ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था। अपने आश्रयदाता अखेराज चौहान के पूर्वज कान्हड़दे के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को लेकर यह काव्य लिखा। 'कान्हड़दे प्रबन्ध' को भ्रम से धर्मग्रन्थ समझकर जैन मुनियों ने अपने उपाश्रय में सुरक्षित रखा। इसलिए इस काव्य की भाषा पुरानी गुजराती के असली रूप का परिचय देती है।

भक्ति युग की परम्परा से अलग होकर इस कवि ने किसी अज्ञात शक्ति के प्रति आत्मनिवेदन न लिखकर देश, जाति, धर्म की रक्षा के लिये मर मिटने वाले वीरों के गौरव का गान किया है। कथा मंगलाचरण और 'नौ किलों के देश' मारवाड़ के वर्णन से आरम्भ होती है। गुजरात का शासक करणदेव बघेला अपने मंत्री माधव के भाई केशव की पत्नी के प्रेम मे उन्मत्त होकर केशव को मार डालता है और उसकी पत्नी को अपनी बना लेता है। मन्त्री माधव क्रुद्ध हो जाता है और गुजरात पर तुर्कों को ले आने का प्रण करता है। माधव के इस विचार का पद्मनाभ ने बड़ा ही क्षोभपूर्ण वर्णन किया है—

जिहां पूजीइ सालिग्राम, जिहाँ जपीइ हरिनूं नाम
जिणि देसि कीजइ जाग, जिहां विप्रनइ दीजइ त्याग,
जिहां तुलसी पीपल पूजीइ, वेद पुराण धर्म बूझीइ
जिणि देसि सहू तीरथ जाइ, स्मृति पुराण मानीय गाइ
......................माधव म्लेच्छ आणिया ताहि।

माधव दिल्ली जाकर अलाउद्दीन से सैन्य-सहायता माँगता है। अलाउद्दीन सेना भेजने के लिए तैयार हो जाता है और पाटण जाने के लिए जालोर के राजा कान्हड़दे को मार्ग देने के लिए लिखता है। कान्हड़दे इन्कार करता है। लेकिन अलफखान के नेतृत्व में सेना मेवाड़ से होकर पाटण पर हमला करती है। करण बघेला अपनी रानी के साथ भाग खड़ा होता है। तुर्क दक्षिणी गुजरात को कुचलकर सौराष्ट्र की ओर बढते हैं। सोमनाथ के मन्दिर की रक्षा के लिए वीर राजपूत अन्तिम दम तक लड़ते हैं। देशद्रोही माधव भी मारा जाता है। तुर्क विजयी होते हैं। मन्दिर गिराया जाता है, शिव की मूर्ति तोड़ी जाती है। इस अवसर पर कवि सोमनाथ की दयनीय मूर्ति पर व्यंग्य करता है:—

....आगइ रूद्र! घणइ कोपानलि दैत्य सवे तिइं बाल्या;
तिइं प्रथवी मांहि पुण्य वरतावींऊ देव लोकि भय टाल्या।
तिं बलकाक त्रिपूर विध्वंसिउ पवन वेगि जिमि तूल;

पद्मनाभ पूछई सोमईया ! केथऊं करूं त्रिसूल ?

अर्थात् हे रुद्र, (पहले तो) आपने अपनी क्रोधाग्नि से राक्षसों को जला डाला था। पृथ्वी पर पुण्य का प्रसार किया था। देव लोक का भय दूर किया था। आपके बल के सामने त्रिपुर ऐसे उड़ा जैसे पवन के धक्के से तूल। पद्मनाभ पूछता है कि हे सोमनाथ आज तुम्हारा वह त्रिशूल कहाँ चला गया ?

विजयी अलफखान अब जालोर के राजा कान्हड़दे की ओर मुड़ता है। वीर राजपूत अपने युद्ध कौशल और असाधारण वीरता से तुर्कों के छक्के छुड़ा देते हैं। अलफखान अपना प्राण लेकर भागता है। सोमनाथ की मूर्ति फिर से प्राप्त कर ली जाती है। यहाँ पर कवि ने भागते हुए तुर्कों की घबड़ाहट तथा दिल्ली में उनकी बेगमों की छटपटाहट का परिस्थिति के अनुकूल चित्रण किया है।

इस पराजय की खबर पाकर अलाउद्दीन बौखला उठता है और स्वयं विशाल सेना लेकर छोटे किलों को जीतता हुआ जालौर को घेर लेता है। अलाउद्दीन की पुत्री पिरोजा कान्हड़दे के पुत्र वीरमदेव पर आसक्त हो जाती है। वह अपने मन के भाव को अपने पिता के सामने भी प्रकट करती है और वीरम को अपना पूर्व जन्म का प्रेमी बताती है। यही पर काव्य का यथार्थवादी रूप कुछ मंद पड़ जाता है। खैर, बादशाह को दिल्ली लौट आना पड़ता है। लेकिन आठ वर्ष के बाद फिर जालोर पर आक्रमण करता है। राजपूत अद्भुत वीरता से लड़ते हैं। पुरुष युद्ध के मैदान में मरते हैं और नारियाँ आग में जलकर। प्रियतम वीरम देव का सिर देखकर पिरोजा बिलखने लगती है और अपने स्वर्गवासी प्रिय के पास जाने के लिए यमुना में कूद पड़ती है।

इस युग के कई कवियों में केवल इसी कवि ने घटनाओं और पात्रों का वास्तविक चित्रण किया है। निष्कपट राजपूतों की वीरता, दृढ़ता और अक्खड़पन का तथा मुसलमानों की धूर्तता, क्रूरता और विजय लालसा का यथार्थ चित्रण किया गया है। शौर्य और प्रेम का यह काव्य अपने ढंग का निराला प्रबंध काव्य है। तत्कालीन गुजराती भाषा, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थिति का 'कान्हड़दे प्रबन्ध' प्रामाणिक परिचय देता है। सम्मान की रक्षा के लिए सतियों का जौहर, राजपूतों की पारस्परिक ईर्ष्या और व्यक्तिगत वीरता तथा भारत पर विजय पाने के लिये मुसलमानों का संगठित प्रयास आदि का कवि ने बड़ा ही मार्मिक और भव्य वर्णन किया है।

भीम और केशवदास—भीम ने कृष्ण भक्ति पर 'हरिलीला षोडश कला' तथा केशवदास ने 'श्रीकृष्ण लीला' नाम के काव्य लिखे। इन दोनों काव्य ग्रन्थों में कृष्ण-भक्ति-काव्य की परम्परा का पालन मात्र हुआ है।

मांडण बंधारो (सन् १४८० ई० के आसपास)—'रामायण', 'रुक्मांगद', तथा 'प्रबोध बत्तीसी' के रचयिता मांडण बंधारो संसार के अनुभवी और प्रतिभाशाली कवि थे। प्रबोध बत्रीसी काव्य चमत्कार से पूर्ण है तथा व्यवहार-ज्ञान के साथ-साथ तत्व ज्ञान का भी परिचय कराने वाली है। चौपाई छंद में छः पंक्ति का छप्पा काव्य-शैली का प्रयोग सबसे पहले इसी कवि ने किया है। अपने समय की प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग अधिक किया है। बाह्याचार, दंभ और पाखंड पर व्यंग्य करने में कवि को आनन्द मिलता था। ज्ञान वैराग्य के प्रतिनिधि कवि अखोभगत इस कवि के ऋणी हैं। लेकिन वेदांत दर्शन के अध्ययन और आध्यात्मिक ज्ञान के बल पर अखो ने गुजराती साहित्य में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है।

नाकर (सन् १५००-१५७५ ई०)—भालण के बाद विपुल संख्या में आख्यान की रचना करने वाला यह कवि बड़ोदा का एक संपत्तिशाली वणिक था। नाकर अपने ब्राह्मण मित्र के लिए आख्यान लिखते थे। इनके मित्र इन आख्यानों को सुनाते थे और अपनी जीविका प्राप्त करते थे। इनकी प्रमुख कृतियाँ ये है—'चन्द्र हासाख्यान', 'ओखाहरण,' 'नलाख्यान' तथा महाभारत का अनुवाद।

नाकर ने महाभारत, रामायण आदि से प्रसंग लेकर स्वतन्त्र आख्यान की रचना की। सरलता और स्वाभाविकता इनके आख्यान के विशिष्ट गुण हैं। इनकी रचनाओं में कृत्रिमता और वृथा पांडित्य का अभाव है। नाकर समाज के लिए अनिष्ट कर रीति रिवाजों पर प्रहार भी करते थे और धर्म-नीति का बोध भी कराते थे। प्रसिद्ध आख्यानकार प्रेमानंद नाकर का बहुत कुछ ऋणी है। नाकर कवि की अपेक्षा कथाकार अधिकार थे किन्तु प्रेमानंद एक प्रतिभा संपन्न कवि भी थे।

विष्णुदास (सन् १५६४ ई० से १६३२ ई०)—नाकर की भांति इन्होंने भी कई आख्यान-काव्यों की रचना की। वे खंभात के रहने वाले थे और बड़नगरा नागर ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था। ये कथा सुनाकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। इन्होंने रुक्मांगद आख्यान, चन्द्र हासाख्यान, ध्रुवाख्यान बभ्रुवाहन आख्यान, हरिश्चन्द्र पुरी, जालंधर आख्यान, चंडी आख्यान, लवकुश आख्यान, सुदामा चरित लक्ष्मण हरण आदि कई आख्यान काव्यों की रचना की। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने नरसिंह मेहता के जीवन से संबंधित घटनाओं पर भी आख्यान लिखा है। जैसे—'मोसाणु तथा हुंडी'। इनकी कवि प्रतिभा सामान्य कोटि की थी। फिर भी प्रेमानंद जैसे कवि भी कथा की दृष्टि से इनके ऋणी कहे जाते है।

विश्वनाथ जानी—ये सन् १६५२ ई० में विद्यमान थे। पाटण के रहने वाले विश्वनाथ जानी अखो के अनुगामी तथा प्रेमानंद के पुरोगामी थे। मोसाला चरित्र, सगाल चरित्र, प्रेम पचीसी तथा चातुरी चालीसी आदि इनकी प्रमुख कृतियां हैं।

'मोसाला चरित्र' में कुँवरबाई के मामेरा (सीमंतोन्नयन) प्रसंग का सकरुण वर्णन है। प्रेमानंद की ऐसी ही एक प्रसिद्ध कृति पर इस ग्रन्थ का प्रभाव माना जाता है। 'प्रेम पच्चीसी' में कृष्ण के वियोग में दुःखी ब्रजवासियों का सकरुण चित्रण है। यह इनकी सुन्दर कृति मानी जाती है। मध्यकाल के कवियों में विश्वनाथ जानी करुण रस के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

प्रेमानन्द (१६३६-१७३४ ई०)—ये समस्त गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि और आख्यानकार माने जाते है। बड़ोदा के चातुर्वंशी ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता, कृष्णराम प्रसिद्ध कथाकार थे। इसलिए काव्य-प्रतिभा इनमें जन्म जात थी। माता-पिता का बचपन मे ही स्वर्गवास हो चुका था फिर मौसी ने इन्हें पाला। पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक इन्हें कुछ शिक्षा भी न मिली। इनके विषय में कई दंत कथाएँ प्रचलित है। एक दिन गाँव में रामचरन नाम का एक साधु आया। बालक प्रेमानंद उसकी सेवा करने लगे। जाने के पूर्व साधु ने कहा—'कल प्रातःकाल जल्दी आना। मैं तुम्हें आशीर्वाद देकर चला जाऊँगा।' प्रेमानंद गये तो लेकिन कुछ देरी से। इसलिए आशीर्वाद तो मिला किन्तु गुजराती भाषा का सर्वश्रेष्ठ कवि होने का। यदि समय पर आ जाते तो संस्कृत भाषा का सर्वश्रेष्ठ कवि होने का आशीर्वाद मिलता। कुछ भी हो गुजराती भाषा को तो एक अद्वितीय कवि मिला ही।

इनके पूर्व तक गुजराती भाषा का अधिक सम्मान नही था। 'अबे-तबे का सोलह आना, इकडम तिकड़म का आठ आना और शुंसा पैसा चार।' अर्थात् 'अबे-तबे' (हिंदी) का सोलह आना मूल्य था, 'इकड़म तिकड़म' (मराठी) का मूल्य आठ आना था, किन्तु 'शुंसा' (गुजराती) का मूल्य केवल चार ही पैसा था। गुजराती की इस शोचनीय दशा को देखकर सहृदय प्रेमानंद जी चिंतित हो उठे। इन्होंने प्रण किया—'जब तक गुजराती संस्कृत के समकक्ष नही खड़ी हो जाती तब तक मैं पगड़ी नही पहनूँगा।' 'रोषदर्शिका सत्यभामाख्यान' में, जो इन्ही का लिखा हुआ बताया जाता है, कवि हरि से प्रार्थना करता है :—

सांगोपाग सुरंग व्यंग अतिशे, धारो गिरा गुर्जरी,
पादे पाद रसाल भूषणवती, थाश्रो सखी उपरी
जे गीर्वाण गिरा गणाय गणतां, ते स्थान ए ल्यो वरी,
थाये श्रेष्ठ सहु सखीजन थकी, ए आश पूरो हरि।

कहा जाता है कि प्रेमानन्द के कई शिष्य थे और इन सबके सहयोग से गुजराती भाषा के उत्थान का सामूहिक प्रयास किया गया था। लेकिन ये सब बातें केवल दंत कथाएं है, प्रामाणिक नहीं।

प्रेमानंद कृत असंख्य आख्यानों में मे 'नलाख्यान', 'दशमस्कंध', 'सुदामा चरित्र', 'मामेरूं', 'रणयज्ञ', 'ओखा हरण', आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। 'स्वर्गनिसरणी' 'विवेक वणजारो' 'भ्रमर पचीसी' आदि तत्त्वज्ञान प्रधान काव्य कहे जाते हैं।

इनके द्वारा रचित तीन नाटक भी कहे जाते हैं किन्तु विद्वानों ने इन नाट्य कृतियों को संदिग्ध प्रमाणित करके अस्वीकृत कर दिया है। इन नाटकों के नाम हैं—(१) रोषदर्शिका सत्यभामाख्यान, (२) पाण्चाली-प्रसन्नाख्यान (३) तपसाख्यान।

अपने युग की राजनीतिक अव्यवस्थाओं से अलिप्त रह कर इस कवि ने बड़ी निश्चिन्तता से साहित्य का सृजन किया। इनका विपुल साहित्य रामायण, महाभारत, भागवत पुराण तथा नरसिंह मेहता के जीवन सम्बन्धी घटनाओं पर आधारित है। इस कवि ने नाकर, विष्णुदास तथा विश्वनाथ जानी की आख्यान कृतियों से कथा वस्तु लेकर अपनी प्रगल्भ प्रतिमा के सहारे उन्हें नव जीवन प्रदान किया।

प्रेमानंद रस सिद्ध कवि थे। इनकी कल्पना का सहारा पाकर पुराणों और महाकाव्यों के पात्र गुजराती वेश भूषा में सजीव हो उठे हैं। कुछ समीक्षकों के मतानुसार प्रेमानंद ने गुजराती बनाने के प्रयास में पौराणिक पात्रों के प्राचीन गौरव को कुछ कम कर दिया है। किन्तु पात्रों को व्यक्तित्व प्रदान करने में देश-काल का सजीव चित्रण करने में, रस निष्पत्ति और विभिन्न रसों की अनुभूति जगाने में महाकवि प्रेमानंद को विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों के समकक्ष रखा जा सकता है। इन्होने प्रास, अनुप्रास, यमक, व्याजोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की योजना संस्कृत के कवियों की तरह से की है। 'नलाख्यान' में दमयन्ती के अनुपम सौन्दर्य का कवि चित्रण करता है :—

> दमयंती नो चोटलो देखी अति सोहाग ;
> अभिमान मूकी लज्जा आणी, पाताल पेठो नाग।
> भीमक सुतानुं वदन सुधाकर, देखी ने शोभाय ;
> चन्द्रमा तो क्षीण पामी, आभमां संताय।
> सृष्टि करतां ब्रह्माजीए, भर्युं तेजनुं पात्र ;
> ते तेजनुं प्रजापतिये घडयुं, दमयंतीनुं गात्र।
> तेमांथी कांई वाध्यु, घडतां खेरो पडियो ;
> ब्रह्माए एकठुं करीने, तेनो चन्द्रमा घडियो।

अर्थात् दमयंती की चोटी को देखकर नाग अभिमान त्याग कर तथा लज्जित होकर पाताल में जा छिपा। भीम की सुता के मुखचन्द्र को देखकर चाँद बादलों में छिप गया। सृष्टि के समय ब्रह्मा ने तेज से पात्र भर कर दमयन्ती के गात

को गढ़ा। तेज का जो अंश शेष रह गया या इधर उधर गिर पड़ा था उसी को इकट्ठा करके चन्द्रमा को गढ़ डाला।

'सुदामाचरित' भी इनकी एक सुन्दर कृति है। पत्नी के हठ से विवश होकर सुदामा जी अपने बाल सखा कृष्ण के यहाँ गये। बड़ा स्वागत सत्कार हुआ। सुदामा ने थोड़ा चावल भेंट किया। श्रीकृष्ण ने इसे सहर्ष स्वीकार किया और बदले में सुदामा को बहुत कुछ दे डाला लेकिन जनाकर नही। सुदामा जी लौटे। मन में दुःखी थे कि कुछ मिला नहीं। अपने गाँव में पहुँचे। लेकिन झोंपडी की जगह राजमहल खड़ा था। तपस्विनी पत्नी युवती बनी खडी थी। यहाँ पर भोले भक्त सुदामा की परेशानी का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है :—

पूजा करीने पालव ग्रह्यो, तब ऋषिजी नाठा जाय।
थर-थर ध्रुजे ने कांई न सूजे, छूटी जटा उघाड़े शीश;
हस्त ग्रहेवा जाय सुन्दरी तब ऋषि जी पाडे चीश।
हुं तो सेजे जोउं छुं घर नवा, मने नथी कपट विचार;
हुं तो वृद्ध ने तमो जोबन नारी, छे कठण लोकाचार।
भोगासक्त हुं नथी आव्यो, मने परमेश्वरनी आण;
जावा द्यो मने कां दमो छो, तमने हजो कल्याण।

अर्थात् उनकी (सुदामा की) पूजा करने समय उसने (पत्नी ने) पाँव पकड़ा। तब ऋषि जी घबड़ाकर पीछे हट गये। (सुदामा जी का) अंग-अंग कांप रहा है; कुछ सूझ नही पड़ रहा है। जटा खुल गयी, बाल हिलने लगे। जब सुन्दरी ने हाथ पकड़ना चाहा तब ऋषिवर चिल्ला उठे—मैं किसी नये घर में आ गया हूँ; क्षमा करो, मेरा कोई कपट विचार नहीं है, मैं वृद्ध हूँ, तुम युवती नारी हो; लोकाचार कठिन है। परमेश्वर की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं भोगासक्त होकर नही आया हूँ। मुझे जाने दो। क्यों सताती हो ? तुम्हारा कल्याण हो।

इनका 'दशमस्कंध' भी अन्य कृतियों की तरह लोक प्रिय है। यशोदा विलाप का तो कवि ने बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। कृष्ण गेंद लाने के लिए यमुना में कूद पड़ते है, माँ यशोदा बिलखने लगती है :—

मारूं माणेकडुं रीसायुं रे; सामलिया,
तारा मनमां ए शुं आयुं रे सामलिया;
हुं अपराधण माता ने मूकी, शा माटे झंपाव्युं रे, सा० मा०
कालिंदीनुं कालुं पाणी, माहे वसे कालो काली;
हवे आशा ते शी मलवानी, केम आवे वनमाली रे, सा० मा०
संतान रूपीयुं मोटुं धन ते करमे लीधुं लूंटी;
में नव जाण्युं जतन करीने पड्युं केम छूटी रे; सा० मा०

पुत्र पामी दु छेले आश्रमे, उछेर्यो प्रतिपाली
नीपनो रस ढली गयो हूँ वीजोग आगे बाली रे; सा० मा०

अर्थात् मेरा लाल रूठ गया। सांवले, तुम्हारे मन में ऐसा क्या आ गया कि अपनी दुखिया माँ को छोड़कर यमुना में कूद गए। यमुना काजल श्याम है और उसमें कलिया नाग रहता है। मैं तुमसे मिलने की आशा कैसे करूँ? अब तुम मेरे पास कैसे आ सकोगे? मुझे संतान रूपी बहुमूल्य रत्न मिला लेकिन भाग्य ने उसे छीन लिया। यत्नपूर्वक रखने पर भी वह रत्न मेरे हाथों से पता नहीं कैसे छूट गया। मैंने जीवन के अन्तिम दिनों में पुत्र पाकर उसका लालन-पालन किया किन्तु रस लुढ़क गया और मैं वियोग संतप्त हो गयी।

आख्यानकार की सफलता कथा कहने की शैली में थी। प्रेमानन्द का कथन-कौशल अनुपम था। संक्षेप में कथा की वास्तविक पूर्व कथा बताकर श्रोता की रुचि जगाते फिर बड़े ही नाटकीय ढंग से देश-काल की परिस्थितियों के सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन के साथ कथा सुनाकर उपस्थित जन को रसमग्न कर देते थे। इनकी सरस प्रसंगों की परख गहरी थी। भाषा पर प्रभुत्व था। फिर भी श्रोताओं की रुचि को ध्यान में रखकर काव्य रचना करने के कारण इस महाकवि की काव्य-कला की कुछ क्षति तो हुई ही है।

चार : भक्ति-वैराग्य-काव्य अथवा ज्ञानाश्रयी शाखा

अखो या अखा भगत (सन् १६१५-१६७४ ई०)—ये जाति के सुनार थे। अहमदाबाद में आकर रहने लगे थे, ईमानदार थे, कुछ समय तक ये टकसाल के मुखिया थे। इनकी धर्मपत्नी का आरम्भ में ही देहान्त हो गया था। इन्हें अपनी प्यारी बहन को भी खोना पड़ा था। एक बार एक महिला ने इन्हें हार बनाने के लिए सोना दिया। उस महिला को ये अपनी सगी बहन की तरह मानते थे। अपनी तरफ से भी कुछ सोना मिलाकर इन्होंने बड़ा सुन्दर हार बना कर दिया। लेकिन उस स्त्री के मन में शंका पैदा हुई। सुनार और ईमानदारी? लेकिन जाँच कराने पर उसकी शंका निर्मूल सिद्ध हुई। इस उदारता के लिए अखो को धन्यवाद देने गयी। लेकिन इससे क्या? अखो को दुःख देने के लिए उतना अविश्वास करना ही बहुत था। इस अविश्वासी दुनिया से अखो दुःखी हो गये। ऐसी ही एक घटना और घटी। टकसाल के कर्मचारियों ने झूठा दोषारोपण करके इन्हें कैद करा दिया। लेकिन निर्दोष प्रमाणित होने पर छोड़ दिये गये। इस क्षणभंगुर, अविश्वासी और छली-प्रपंची दुनिया के प्रति अखो के मन में विरक्ति पैदा हो गयी। औजारों को कुँए में फेंक कर आत्मशान्ति पाने के लिए घर से निकल पड़े।

गोकुल पहुँचे। अखो धनी थे। शायद इसीलिए गोस्वामी जी ने इनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। अखो ने लिखा है—'गुरु कर्या में गोकुलनाथ, गुरुए मूजने

घाली नाथ ।' लेकिन अखो जो चाहते थे वह नहीं मिला। आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति नही हुई । जब गुरु को ही हरि का ज्ञान नहीं है तो चेले को कहाँ से मिलेगा :—

गुरु थई बेठो होंशे करी, कंठे पहाड़, शके क्यम तरी ?
पोते हरि नहीं जाणे लेश, काढी बेठो गुरुनो वेश।

गले में पत्थर लटकाने वाले संसार-सागर से ऊपर कैसे रह सकते हैं ? खैर, अखो काशी पहुँचे। वहाँ पर इन्हें सच्चे गुरु मिले। श्री ब्रह्मानन्द जी अपने शिष्य को वेदान्त-दर्शन का ज्ञान देते और अखो झोपड़ी के पीछे खड़े होकर इस ज्ञानामृत का पान करते। एक दिन शिष्य को नींद आ गयी। प्रश्न का उत्तर अखो ने दिया। श्री ब्रह्मानन्द जी ने अखो को संस्कार सम्पन्न समझकर ज्ञान का प्रकाश दिया। इस ज्ञान ज्योति को लेकर अखो अहमदाबाद की ओर लौट पड़े। गोकुल में अपने प्रथम गुरु गोस्वामी जी से भी मिलना चाहा लेकिन अब तो अखो के पास धन नहीं था। फिर इन्हें कौन पहचानता ? इस पाखंड पर झुँझलाकर अखो घर लौट कर शंकराचार्य जी के वेदान्त दर्शन का गहन अध्ययन करने लगे।

वेदान्त की गूढ़ दार्शनिकता को सरल रूप में व्यक्त करने के कारण अखो कृत 'अखे गीता' तथा 'अनुभव बिंदु' को लोक भाषा के उपनिषद का गौरव दिया जाता है। इन दो कृतियों के अतिरिक्त 'पंचीकरण', 'गुरु-शिष्य संवाद', 'चित्तविचार संवाद', 'ब्रह्मलीला' (हिन्दी में), 'कैवल्य गीता' तथा ७४६ छप्पा आदि भी इनकी रचनाएँ हैं।

'अनुभव बिन्दु'—अखो की छोटी किन्तु सुन्दर कृति है। चालीस छप्पा में लिखित यह कृति एक उत्तम खंड काव्य है। इसमें कवि सचोट दृष्टांतों के साथ माया का स्वरूप समझाता है तथा जीव और ब्रह्म की एकता का उद्बोधन करता है। इसमें अखो का तत्त्वज्ञान सम्बन्धी समस्त जीवन का अनुभव संक्षेप में और व्यंग्यपूर्ण शैली में व्यक्त हुआ है। इस कृति में ही अखो का दोनों—कवि और ज्ञानी—रूप स्पष्ट रूप में हमारे सामने आता है। **'अखे गीता'** तो अखो की ग्रन्थमणि है, 'जीवन भर के विचारों का दोहन' है। ऊपर लिखित अपनी अन्य कृतियों में गुरु माहात्म्य, ज्ञान भक्ति तथा वैराग्य का माहात्म्य, माया का स्वरूप, जीव, ईश्वर तथा ब्रह्म की एकता आदि के विषय में अखो ने अपने जो-जो विचार व्यक्त किए हैं वे सभी विचार इस एक काव्य ग्रन्थ में व्यवस्थित रूप में तथा विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किए गए हैं।

हिन्दी के ज्ञानी कवि संत कबीर की तरह अखो में भी अपने आपके ऊपर अखंड विश्वास था। इसीलिए अखो संस्कृत भाषा, तरल धर्मी विद्वानों, पाखंडी धर्मोपदेशकों, प्रदर्शन-प्रिय कवियों, धार्मिक बाह्याचारों तथा सामाजिक कुरीतियों

पर तिलमिला देने वाले व्यंग बाण छोड़ते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है :—

ओछुं पात्र ने अदकुं मण्यो, वढकणी वहुए दीकरो जण्यो।
मारकणो सांढ चोमासुं महाल्यो, करडकणा कुतरा ने हडकवा हाल्यो
मरकट ने वली मदिरा पीए, अखा एथी सौ को बीहे।

अर्थात् मिथ्या पंडित, पुत्र को जन्म देने वाली झगड़ालू औरत, चौमासे का मारू साँड़, पागल कुत्ता तथा मदिरा पान किए बन्दर से सब भागते हैं।

तिलक करतां त्रेपन वह्यां, जप मलानां नाकां गयां,
तीर्थ फरी फरी थाक्या चर्ण, तोय न पहोंता हरि शर्ण,
कथा सुणी सुणी फूट्या कान अखा तोय नाव्युं ब्रह्म ज्ञान।

अर्थात्—तिलक करते करते तिरपन वर्ष बीत गए; माला भी जीर्ण हो गई; तीर्थ स्थानों का चक्कर काटने काटते पैर थक गए, तो भी हरि के पास न पहुँचे। कथा सुन सुन कर कान बहरे हो गए फिर भी अखा को ब्रह्म ज्ञान न मिला।

आपे आप मां उठी बला, एक कहे राम एक कहे अल्लाह।

अर्थात् धर्म व्यर्थ का आपसी झगड़ा है, एक राम कहता है, दूसरा अल्लाह।

अखो ने अपने विचारों और भावों को दृष्टान्त की सहायता से सरल व्यंग्य पूर्ण भाषा में व्यक्त किया है। जनता में प्रचलित कहावतों, मुहावरों और रूढ़ियों का अत्यधिक प्रयोग किया है। जहाँ अखो ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यक्त किया है, वहाँ भाषा गूढ़ और दुर्बोध हो गई है। फिर भी कहीं कहीं ब्रह्मानंद की अनुभूति का चित्रण कवित्वमय हुआ है; जैसे इस पंक्ति में—अभिनवो आनन्द आज अगोचर गोचर हवुं ए।

प्रीतम दास (जन्म १७२५ ई० के आस-पास तथा मृत्यु १७६८ ई०)—ये जाति के भाट थे और संघेसर ग्राम के रहने वाले थे। कुछ कहते हैं कि ये जन्मांध थे लेकिन कुछ के मतानुसार ये बाद में अंधे हुए। इन्होंने भगवद्गीता का गुजराती में अनुवाद किया। एकादश स्कंध, धरम गीता, सारस गीता, ज्ञान गीता तथा आध्यात्म रामायण की गुजराती में रचना की। ज्ञान प्रकाश, ज्ञान भास, ज्ञान कक्को तथा गुरु महिमा भी इन्हीं की रचनायें हैं। इन कृतियों से पता चलता है कि इन्हें वेदांत का अच्छा ज्ञान था। इसके अलावा इन्होने ब्रह्म लीला, कृष्ण लीला तथा कृष्ण जन्म आदि पदों में लिखा।

जिस तरह नरसिंह मेहता की प्रभातियाँ और अखो का छप्पा प्रसिद्ध है उसी तरह प्रीतमदास के पद गुजरात में जन प्रिय हैं।

धीरा भगत (१७५३-१८२५ ई०)—ये जाति के ब्रह्म भट्ट और बड़ोदा के

पास गोदड़ा के रहने वाले थे। झगड़ालू पत्नी के कारण धीरा का जीवन दुःखी हो गया था। इस दुनिया से ऊब कर वैरागी बन गए। काफी की तरह से ताजगी देने वाले इनके पद 'धीरानी काफी' नाम से प्रसिद्ध हैं। ये कविता लिख कर बाँस के अन्दर रखकर मही नदी के प्रवाह में छोड़ देते थे। कोई न कोई इस बाँस को पकड़ कर इनके काव्य को पढ़ता ही था। तो अपनी काफियों के लिए धीरो गुजराती साहित्य में प्रसिद्ध हैं। 'काफी' पद का एक विशिष्ट प्रकार है। 'स्वरूपनी काफीओ' के कुछ पद बहुत ही लोकप्रिय हुए।

धीरो ने संसार की असारता, भोग विलास की क्षणिकता, दुनिया का झंझट तथा शान्ति के लिए प्रभु की भक्ति आदि को दृष्टांत देकर अपने पदों में समझाने का प्रयास किया है। तत्त्वज्ञान-पूर्ण इनका काव्य घरेलू बोल चाल की भाषा में लिखा गया है। इनकी रचनाओं में समाज पर व्यंग्य तो है किंतु अखो की कटुता नहीं है।

नीरांत भगत (१७७०-१८४६ ई०)—ये बड़ोदा के समीप देथान के पाटीदार थे। लोक प्रिय भक्त कवि थे। मनोहर शैली, सरल और उर्दू मिश्रित भाषा में काव्य रचना करते थे।

भोजा भगत (१७८५-१८५० ई०)—ये काठियावाड़ के निरक्षर पाटीदार थे। गिरनार के किसी अज्ञात साधु से योग और भक्ति की दीक्षा पाकर पद-गान करने में सारा जीवन बिता दिया। इनके पद संसार की कुरीतियों पर चाबुक की तरह प्रहार करते हैं इसलिए ये पद 'चाबखा' नाम से प्रसिद्ध हैं। इस कवि ने सांसारिक झंझटों का बड़ा ही दुखभरा चित्रण किया है।

उपसंहार—

इस प्रकार हम देखते हैं कि अखो की ज्ञान वैराग्य संबंधी बातों की प्रतिध्वनि अर्वाचीन युग के आरंभ तक कई भक्तों की वाणी में सुनाई पड़ती रही। ये सभी ज्ञानी कवि गण इस सुषमा पूर्ण संसार को असार मानकर दूसरे लोक में आनंद की प्राप्ति की तैयारी में जीवन पर्यन्त लगे रहे। इसलिए इनके काव्य में जीवन के उल्लास का दर्शन नहीं मिलता है।

पाँच : पद्यवार्ता और शामलभट्ट

पद्यवार्ता—कथा-कहानी से लोग प्राचीन काल से ही परिचित हैं। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश—सभी भाषाओं में कथा-कहानी की रचना हुई है। 'जातक' और 'पंचतन्त्र' की कहानियों से समूचा संसार परिचित है। गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत में लिखी हुई 'बृहत् कथा' तो सुप्रसिद्ध ही है। इसने इस देश के कवियों को लौकिक रस के कथानक दिए हैं। 'कथासरित्सागर', 'बृहत्कथा-मंजरी', वेतालपंचविंशतिका', 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' तथा 'सुक सप्तती' आदि नैतिकता तथा

लोक चातुरी सिखाने वाली कहानियों के ऋणी तो मध्यकाल के सभी कथाकार हैं।

गुजरात में इन लौकिक कथाओं के आधार पर कई मनोरंजक काव्य लिखे गए हैं। इन पद्यवार्ताओं में मुसलमानों के आने के पूर्व का जन-जीवन चित्रित है। इन पद्यवार्ताओं में सरल, निश्छल प्रेम है; इन्द्रजाल है; मनुष्य का पशु-पक्षी का रूप धारण करना है; मुर्दा भी चलता-फिरता है; उन्माद पूर्ण साहसिक अभियान है; अर्थात् सब कुछ है। क्या नहीं है--चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार तथा अपहरण का खुले आम वर्णन है। पाठक एक विचित्र रहस्यमयी दुनिया में विचरण करता है। सारांश यह कि जो इस दुनिया में नहीं भी होता है वह भी इनमें घटित दिखाया गया है। मध्य युग की अशिक्षिता नारी को प्रगल्भ पंडिता दिखाया गया है। वे बड़ी गूढ़ समस्यायों का हल भी प्रस्तुत करती हैं। यही नही पर्दे में रहने वाली नारी इन वार्ताओं में घोड़े पर चढ़कर पुरुषों का अपहरण भी करती है। मनुष्य का मन ही तो है। जो सामने नही है उसे कल्पनालोक में पाना चाहता है। संकीर्ण समाज से भागकर किसी रहस्यमयी दुनिया में उन्मुक्त विचरण करना चाहता है। ऐसी है ये पद्य-वार्ताएँ चमत्कार और अद्भुत रस से पूर्ण।

मंगलाचरण से कथा का आरंभ किया जाता था। अंत में फलश्रुति तथा देश-काल का वर्णन रहता था और अपने तथा अपने आश्रयदाता का परिचय देता था। एक ही वार्ता को कई दिनों तक सुनाया जाता था। मूल कथा को अधिक विस्तार देने के लिए उपकथाओं (आड़ कथा) की सहायता ली जाती थी। बीच-बीच में श्रोताओं की बुद्धि को जगाए रखने के लिए समस्यायें भी प्रस्तुत की जाती थीं। नीति-बोध तथा व्यवहार-ज्ञान देने वाले सुभाषित भी सुनाये जाते थे। नायक की अपेक्षा नायिकाएँ अधिक तेजस्वी बताई जाती थीं।

शामलभट्ट (१६९०—१७६९ ई०)—ये प्रेमानन्द के समकालीन तथा अहमदाबाद के पास वेंगनपुर के श्री गोड़ मालवी ब्राह्मण थे। संस्कृत भाषा के पंडित तथा हिन्दी और फारसी के ज्ञाता थे। प्रेमानन्द की तरह इन्होंने भी जनता को आख्यान सुनाना प्रारम्भ किया। किन्तु प्रेमानन्द की वाणी में कुछ ऐसा जादू था कि जनता किसी दूसरे को सुनने के लिये तैयार नही थी। शामल आख्यान-काव्य का क्षेत्र छोड़कर पद्यवार्ता पर आ गए और कहने लगे— 'कह्यु ं कथे ते शानो कवि ?' अर्थात् कही हुई कथा को कहने वाला कवि कैसे ? यद्यपि शामल भी प्राचीन कथा साहित्य से वस्तु लेकर वार्ता सुनाते थे फिर भी अशिक्षित जनता को छकाने के लिये यह उक्ति काम कर गई। वार्ताकार के रूप में शामल बहुत हीं लोकप्रिय हुए।

तो, आख्यान-काव्य का प्रचलित राज मार्ग छोड़कर शामल ने पद्य-वार्ता

का रास्ता अपनाया। बचपन में सिंहासन बत्तीसी आदि अद्भुत रस प्रधान कहानियों को सुना था। इन कथाओं के ही ढंग पर इस कवि ने वार्ता साहित्य की सृष्टि की। आख्यान सुनते-सुनते जनता ऊब गई थी। शामल की अद्भुत वार्ताओं को लोग रुचि से सुनते थे।

जिस प्रकार आख्यानकारों ने प्राचीन महाकाव्यों और पुराणों से सामग्री लेकर काव्य रचना की उसी तरह से शामल ने भी वृहत्कथा मंजरी, कथासरित सागर तथा प्रचलित लोकवार्ता ग्रन्थों से कथा-वस्तु लेकर पद्यबद्ध किया। किन्तु शामल की मौलिकता भी कम नहीं है। कुछ पात्रों का नाम बदल दिया है, नये-नये प्रसंगों की उद्भावना की है तथा कथा का विस्तार भी जन रुचि के अनुसार किया है। इनकी लोकवार्ता का प्रधान उद्देश्य जन-रंजन था। इसलिए अद्भुत, अपरिचित घटनाओं तथा विचित्र साहसी पात्रों की सृष्टि की है। प्रसंगों के चयन, घटनाओं की उद्भावना तथा पात्रों के शील वैचित्र्य में शामल की प्रतिभा का परिचय मिलता है। ये कवि की अपेक्षा कथाकार अधिक थे।

शामल ने शिवपुराण, अंगदविष्टि, शुकदेवाख्यान, विश्वेश्वराख्यान तथा रावण मन्दोदरी संवाद आदि आख्यान काव्यों की रचना की। पद्मावती, रुपावती, नंदबत्रीशी, सूडबहोतेरी, सिंहासनबत्रीशी, पंचदंडनी वार्ता, विनेचटनी वार्ता तथा मदनमोहना आदि पद्य-वार्ताओं की सृष्टि की।

शामल की वार्ताओं की नायिकाएँ अधिक तेजस्वी होती थीं। स्त्री पात्रों के चित्रण में शामल कुशल कलाकार थे। भिन्न-भिन्न प्रकार की भिन्न-भिन्न गुण-लक्षणों वाली स्त्रियों का वर्णन किया है। ये स्त्रियाँ कठिनाइयों से घबराती नहीं बल्कि नया रास्ता खोज निकालती हैं; अपनी समस्या का ठीक उत्तर देने वाले पुरुष के साथ विवाह करती हैं; पुरुष वेश में अभियान करके अपने पति के लिये राजकुमारियाँ पकड़ लाती हैं; प्रथम दर्शन में ही प्रेम करने लगती हैं, दूसरी जाति के पुरुष से विवाह करती है; माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध अपने प्रेमी से विवाह करती हैं; शिक्षा पाती हैं; घोड़ सवारी करती हैं; तैरती हैं तथा गाने-बजाने में निपुणता का परिचय देती हैं।

नीति-बोध तथा लोक चातुरी का ज्ञान कराने वाले सुभाषित कला की दृष्टि से कथा प्रवाह में बाधक हैं। यहाँ पर शामल ने परम्परा का पालन मात्र किया है। जिस प्रकार आख्यान काव्य प्रेमानन्द की प्रतिभा का साथ पाकर सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया उसी तरह पद्य वार्ता साहित्य भी शामल के द्वारा उन्नत और विकसित हुआ। किन्तु आख्यान काव्य की धारा प्रेमानन्द के बाद मंद पड़ जाती है और वही दशा शामल के बाद पद्यवार्ता साहित्य की होती है।

छ : शाक्त कवि तथा गरबा

अम्बाजी, बहुचरा जी और कालिका (पावागढ़) शक्ति पूजा के केन्द्र रहे हैं। अज्ञात शक्ति की मातृ रूप में आराधना शक्ति पूजा के रूप में लोक प्रचलित हुई। इस पूजा से सम्बन्धित साहित्य भी रचा गया। गुजरात के 'गरबा' नामक साहित्य के प्रकार में देवी के स्वरूप का, शक्ति का, पूजा से फल आदि का वर्णन रहता है। कई छेदों वाली मटकी में दीपक रखा जाता है। उस मटकी को बीच में रख कर स्त्रियाँ उसके चारों ओर वर्तुलाकार में घूमती हैं और ताली बजाकर अम्बाजी का गरबा लेती (गाती) है। यह उत्सव प्रायः शरत् ऋतु में नवरात्रि के अवसर पर मनाया जाता है।

रास से प्रभावित गरबा गुजरात के समूह नृत्य का एक प्रकार है। इस सम्प्रदाय में पुरुष भी कभी-कभी गरबी लेते हैं (गाते हैं)। गरबा वर्णन प्रधान गीत है और गरबी उर्मि प्रधान प्रगीति। गरबा में समाज के दुःख-हरण के लिए प्रार्थना है और गरबी में भावना का उन्मेष अधिक है। माताजी के अलावा राधा-कृष्ण से सम्बन्धित गरबों की भी रचना हुई है। सारांश यह कि गरबा तथा गरबी में गाये जाने वाले समूह अभिनयक्षम काव्य प्रकार हैं। विस्तृत और वर्णनात्मक होने के कारण गरबा में गरबी की सी सुसंबद्धता, सुश्लिष्टता तथा सुकुमारता नहीं होती। गरबा के लिए वल्लभ मेवाड़ो प्रसिद्ध हैं और गरबी के लिए दयाराम।

वल्लभ मेवाड़ो (सन् १७४० ई० के आस-पास)—इनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था। माताजी के अनन्य भक्त थे। जीवन भर बहुचरा माताजी के स्थान पर आराधना में लीन रहे। यह भावुक भक्त अपने गरबों के लिए गुजरात में प्रेमानंद और अखो के समान ही प्रसिद्ध हैं। इनके पूर्व किसी कवि का गरबा आज उपलब्ध नहीं है इसलिए इन्हीं को गरबा का जनक कहा जाता है।

वल्लभ मेवाड़ो ने अम्बा, बहुचरा तथा कालिका माता के स्थानों की महिमा के वर्णन से युक्त गरबों की रचना की है। अपने गरबा में माता की शक्ति, सौन्दर्य, वस्त्र आभूषण इत्यादि का वर्णन किया है। माता की स्तुति की है, कृपा की याचना की है। लेकिन माता का यह भक्त-कवि समाज के दुःख दर्द को नहीं भुला सका। दुकाड़ (दुष्काल) और कजोड़ा (अनमेल दम्पति) के दुःखों, वेदनाओं का अपने गरबा में वर्णन किया है। इससे तत्कालीन समाज में प्रचलित असंतोषजनक परिस्थिति का परिचय मिलता है। अपने समय में प्रचलित दुराचार, धार्मिक दंभ, पाखंड, अधर्म आदि को दूर करने के लिए इस कवि ने माता से प्रार्थना की है।

अपने गरबा में राग, ताल तथा लय के सफल समन्वय के कारण यह कवि गुजरात में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इन्होंने 'व्रज वियोग' और 'सत्यभामा का रूठना' आदि कृष्ण जीवन से सम्बन्धित घटनाओं पर भी गरबा की रचना की है।

कवि प्रतिभा मध्यम कोटि की होते हुए भी जनप्रिय गरबा के एक मात्र रचयिता के रूप में इन्हें गुजरात में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। आज भी गरबा समाप्त होने के बाद वल्लभ मेवाड़ो की जय बोली जाती है।

सात : स्वामी नारायण सम्प्रदाय तथा उसका भक्ति-काव्य

इस सम्प्रदाय के संस्थापक श्री रामानद के शिष्य सहजानंद स्वामी थे। इनका जन्म अयोध्या के पास छपैया ग्राम में सन् १७८१ ई० के आस-पास हुआ था। सन् १८०१ ई० में ये गुजरात तथा काठियावाड़ आये। उस समय यहाँ की धार्मिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी। प्रेममूर्ति कृष्ण की आराधना का प्रचार करने वाला वल्लभ सम्प्रदाय विलासिता में डूबता जा रहा था। ऐसे अवसर पर स्वामी नारायण सम्प्रदाय पवित्रता और संयम की मशाल लेकर आगे बढ़ा। यद्यपि इसकी प्रेरणा का स्रोत तो वैष्णव धर्म ही है तथापि स्वामी सहजानंद ने अपने प्रभाव से इस सम्प्रदाय को व्यक्तित्व प्रदान किया। इस सम्प्रदाय में नारियों के सजीव शरीर को तो देखना दूर रहा उनके चित्र दर्शन तथा नाम के उच्चारण की भी मनाही थी। फिर भी इस सम्प्रदाय के भक्त कवियों में नारियों के प्रति पूज्य भाव था तथा विधवा विवाह भी मान्य था। स्वामी सहजानंद ने लोगों को विशुद्ध, पवित्र, उपयोगी तथा भक्तिपरायण जीवन बिताने का उपदेश दिया। इस सम्प्रदाय ने गरीबों तथा काठियावाड़ के उग्र आदिवासियों के लिए बहुत कुछ किया। एक प्रकार से निम्न स्तर के लोगों में आत्मबल पैदा करने का तथा व्यसनियों को व्यसन-मुक्त करने का यह सबल आन्दोलन था। बडताल, गढडा तथा अहमदाबाद—इस सम्प्रदाय की तीन प्रमुख गद्दियाँ हैं। इन गद्दियों की स्थापना में स्वामी नारायण सम्प्रदाय ने भी वल्लभ सम्प्रदाय का ही अनुसरण किया। बड़ताल की गद्दी गुजरात में सबसे धनी मानी जाती है।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के अधिकांश साधु कवि इस सम्प्रदाय के थे। गरीब तथा अशिक्षित होते हुए भी इन निवृत्ति मार्गी भक्तों ने धर्म के मूल सिद्धान्तों को अपने अनुभव से पहचाना था। धर्म की यह पहचान गहरी और सच्ची थी। इसीलिये ज्ञान-वैराग्य तथा मर्मस्पर्शी उपदेशों से युक्त इनका भक्ति-काव्य इस युग के साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इनके काव्य में संसार की असारता का वर्णन है किन्तु मानव जीवन की श्रेष्ठता को समझाने का प्रयास भी है। मिट्टी कहकर शरीर की उपेक्षा नहीं की गयी है बल्कि धर्माचरण के लिए उसे साधन माना गया है। इन कवियों की सहज, सरल निरूपण पद्धति का प्रभाव गुजराती भाषा पर काफी पड़ा। इनकी भाषा में कहीं घुमाव या जटिलता नहीं है। इस सम्प्रदाय के कवियों ने अधिकतर पदों तथा गरबियों की ही रचना की है।

मुक्तानंद (मुकुन्ददास) (१७६१–१८२४)—ये ध्रांगध्रा के रहने वाले थे।

१३ वर्ष की छोटी उम्र में ही इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। घर छोड़कर मांगरोल में जाकर रामानंद के शिष्य बने और स्वामी सहजानंद के गुरुभाई हुए। कहा जाता है कि इन्होंने नौ हजार पदों की रचना की। इसके अलावा उद्धव गीता, सती गीता, शिक्षा पत्री, धर्मामृत, प्रेमलीला, रामलीला आदि काव्य ग्रन्थ भी इन्होंने ही लिखा है। भक्ति के अतिरिक्त शृंगारिक पदों की भी रचना की है।

ब्रह्मानंद—ये जाति के भाट थे। डूंगरपुर के पास के एक गाँव में इनका जन्म हुआ था। ये पिंगल शास्त्र के ज्ञाता थे। 'लाडु' नाम से चारणी भाषा में; 'ब्रह्मानंद' नाम से गुजराती भाषा में तथा 'श्री रंग' नाम से हिन्दी भाषा में काव्य की रचना की। इनके द्वारा रचित आठ हजार पद कहे जाते है। इसके अतिरिक्त दानलीला, कृष्ण कीर्तन तथा शृंगार के पदों की रचना भी की है। इस सम्प्रदाय के कवियों में ब्रह्मानंद भाषा की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते है। इनके कितने सरस पद तो जनता की जीभ पर नाचते हैं। जैसे यह पद :—

आ तन रंग पतंग सरीखो जाता वार न लागे जी,
असंख्य गया धन संपत्ति मेली तारी नजरो आगे जी।
आंजे तेल फुलेल लगावे माथे छोगा घाले ज,
जोबन धननु जोर जणावे, छाती काढ़ी चाले जी।
जेम अन्दर डे दारू पीधो मस्तानों थई डोले जी,
मगरूरी मां अंग मरोडे, जेम तेम मुख थो बोले जी।
मनमां जाणे छे मुज सरीखो रसियो नहि परत राणी जी।
बहारे ताकी रही बिलाडी, लेतां वार न लागी जी।
आज काल मा हुं तुं करता जमडा पकडी जाशे जी।
ब्रह्मानन्द कहे चेत अज्ञानी, अंत फजेती थाशे जी।

प्रेमानन्द स्वामी (१७७९–१८४५ ई०)—ये प्रेमानन्द सखी के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। ये गढडाना के रहने वाले थे। इन्हे बहुत ही मधुर कंठ प्राप्त हुआ था। स्वामी सहजानंद के वियोग में इन्होंने उच्चकोटि के पदों की रचना की है। ये जिस समय 'बन्दु सहजानंद रस रूप अनुपम सार ने रे लाल' नामक पद गाते थे जनता रस मग्न हो जाती थी और चुपचाप आँखों से आँसू बहाती थी। ज्ञान और भक्ति के पदों के उपरांत इन्होने शृंगारिक पदों की भी रचना की है। इनके लिए स्वामी सहजानंद प्रेम रूप कृष्ण थे और ये थे एक गोपी-प्रेमिका। इसलिए इनकी उपासना भाव विह्वल आराधना के रूप में प्रकट हुई। ये 'माधुर्य' भाव के उपासक थे। नरसिंह मेहता की प्रेम लक्षणा भक्ति का रंग इन्हीं में अधिक पाया जाता है।

निष्कुलानंद—कच्छ की विश्व कर्मा ब्राह्मण जाति में इनका जन्म हुआ था। इनका मूल नाम लालजी था। ये वैराग्य की मूर्ति थे। इनके लिखे हुए करीब तीन हजार पद कहे जाते हैं। कुछ पद अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं। निम्नलिखित पद तो महात्मा गांधी का प्रिय भजन था।

त्याग न टके रे वैराग्य बिना।

देवानंद—ये अन्य सम्प्रदायों में भी साधु कवि के रूप में प्रसिद्ध थे। ये दलपतराम के गुरु थे। इसलिए इन्हें मध्यकाल तथा आधुनिककाल की कड़ी के रूप में माना जाता है। भक्ति-वैराग्य के पदों के अतिरिक्त उन्होंने गरबियों की भी रचना की है। भिक्षुक भी इनके पदों को गाकर भिक्षा माँगते थे। इनका निम्नलिखित पद तो अधिक लोकप्रिय हुआ है :—

कर प्रभु संगाथे दृढ प्रीतडी रे।
मर जावुं मेली धनमाल, अन्तकाले संगु नहि कोई नुं रे,
संस्कारे सम्बन्धी सर्वे मल्यां रे,
ये छे जूठी मायाकेरी जाण। अन्तकाले
मारूं मारूं करीने धन मेलव्युं रे,
तेमा तारूं नथी तलभार। अंतकाले
सुख स्वप्ना जेवुं छे संसारनुं रे,
अने जातां न लागे वार। अंतकाले

आठ : मध्यकाल की कवयित्रियाँ

पश्चिमी भारत की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मीराबाई का परिचय दिया जा चुका है। कुछ समीक्षकों के अनुसार प्रेमानंद तथा धीरा भगत के शिष्य मंडल में कुछ स्त्रियाँ भी थीं। इनमें से कुछ सुमधुर कंठ वाली कवयित्रियाँ भी थीं। कुछ का परिचय नीचे दिया जाता है :—

दीवाली बाई—ये डभोई की बाल विधवा ब्राह्मणी थीं। ये आरम्भ में बडोदरा में और बाद में अयोध्या में रहीं। गुरु के पास रामायण का अध्ययन किया और राम भक्ति में लीन हुईं। इन्होंने रामजन्म, विवाह, राज्याभिषेक इत्यादि प्रसंगों पर कई पदों की रचना की है।

राधाबाई—दक्षिणी ब्राह्मण जाति में इनका जन्म हुआ था। बडोदरा में रहती थीं। इनका वर्ण गोरा था और कंठ मधुर। हमेशा सफेद बस्त्र में सजी रहती थी। उत्तर भारत का भ्रमण किया था। हिन्दी, गुजराती तथा मराठी भाषाओं की जानकार थीं। इसीलिये इनके पदों में तीनों भाषाओं का मेल है। इन्होंने राधा-कृष्ण की भक्ति के पदों तथा तुकाराम, ज्ञानेश्वर और विनोबा आदि संतों की पद्य में जीवन चरित्र की रचना की है।

कृष्णाबाई—वडनगर में नागर जाति में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने 'सीताजीनी कांचली' तथा 'कृष्ण नां हालरडा' आदि की रचना की है।

पुरीबाई—इन्होंने 'सीता मंगल' नाम के काव्य की रचना की है। इसमें सीता जी के विवाह के प्रसंग का वर्णन है। गुजरात में विवाह के अवसर पर इस काव्य का कुछ भाग गाया जाता है।

गौरीबाई—डुगरपुर में नागर ब्राह्मण जाति में इनका जन्म हुआ था। ये बाल विधवा थीं। गुरु से वेदांत का ज्ञान प्राप्त किया और वही काव्य में उतारा। इन्होंने ज्ञान-वैराग्य के सैकड़ों पदों की रचना की है।

नौ : पारसी लेखक

मूर्ति तोड़ने वाले अरबों के उन्माद मे परेशान होकर कुछ पारसी ईरान छोड़कर भारत आए थे। सन् ७८५ ई० में सूरत जिले में संजाण के आस-पास आकर बस गये थे। इन्होंने गुजराती भाषा को अपनाया और निम्नवर्ग की हिन्दू लड़कियों से विवाह किया। खेती करना और दारू बेचना इनका मुख्य पेशा था। कितने ही पारसी लेखकों ने पुरानी गुजराती भाषा में अपने ढंग की पुस्तकों की रचना की। कुछ पारसी धर्म-गुरुओं ने संस्कृत का अध्ययन किया और जेंद तथा पेहलवी भाषाओं की कविताओं को संस्कृत और गुजराती में अनुवाद किया। बहेराम लक्ष्मीधर ने १४५१ ई० में 'अर्दे-विराफ-नामेंह' लिखा। लेकिन न तो इनकी संस्कृत शुद्ध थी और न गुजराती। इसके उपरांत तो पारसी कवियों ने भी, गुजराती कवियों का तरह अपने धर्म-ग्रन्थों से तथा फिरदौसी के 'शाहनामेह' से कथा वस्तु लेकर आख्यान लिखना प्रारम्भ किया। सूरत के एखद रूस्तम पेशोतन ने 'जरथोश्त-नामेंह' (१३७६ ई०) तथा 'सियवक्ष नामेंह' (१६८०) की रचना की। इस प्रकार कई जीवन चरित्र (नामेंह) लिखे गए। एखद रूस्तम पेशोतन की रचनाओं में संस्कृत भाषा का स्पष्ट प्रभाव झलकता है तथा पारसियों पर हिन्दू रीति-रिवाजों के प्रभाव का परिचय मिलता है। भारतीय परम्परा में ईरान की महिलाओं का शृंगार वर्णन देखिए :—

तम सीश फुल पुनम चंद ने अमाशी सूर।
ए वरांन रांणमां एथी घणु वरशे छे नूर ॥
एम नीडाल टीक बुध बहरेस्पत शूकर जड़ी।
तम नाशका नथ ते सब चेराग कोणे घड़ी ॥

इसके उपरांत नोशेखान ने 'पंचगिहि अने शश्गहंबारनी तमाम तपसील' की रचना १७०९ ई० में की।

दस : मध्यकाल के अन्तिम कवि : दयाराम

निर्मल जल तथा मंथर गति से बहने वाली नर्मदा नदी के तट पर स्थित

चाँदोद ग्राम मे सन् १७६७ ई० मे दयाराम का जन्म हुआ था। ये जाति के सठोदरा नागर ब्राह्मण थे। जब ये तेरह वर्ष के थे तभी इनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था। इनका रंग गोरा तथा शरीर सुन्दर था। किन्तु स्वभाव से रंगीले, चपल और शरारती थे। खेलने-कूदने, गाने बजाने मे निपुण थे। कंठ भी मधुर था। कहते है कि चाँदोद की युवतियाँ जब नर्मदा मे जल भरने जाती थी तब ये कंकड फेंक कर उनकी गागर फोड देते थे और मजाक करते थे। एक बार एक सोनारिन को छेडकर बुरे फँसे थे। नदी मे कूद पडे और तैरते-तैरते दूसरे गाँव मे निकल गए। वही पर केशवानन्द नामक एक सन्यासी से परिचय हुआ। फिर ये उन्ही के चेला बन गये।

बीस वर्ष की अवस्था मे चाँदोद से डभोई मे आकर रहने लगे। फिर तीर्थ यात्रा पर निकले। गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, काशी, बद्रिकाश्रम, रामेश्वर, द्वारका आदि तीर्थस्थानो का भ्रमण किया। जहाँ भी गये विद्वानो और संतो का साथ किया। हिंदी, ब्रज तथा संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। पुरानी गुजराती भाषा के कवियो का भी अध्ययन किया। वैष्णव धर्म मे दीक्षा लेने पर दयाशंकर से दयाराम नाम रख लिया। इन्होने श्रीनाथ जी की यात्रा की। गोस्वामी जी के मंदिर मे कई विद्वानो और कवियो से इनका परिचय हुआ। इस प्रकार वही से इन्हे प्रेरणा मिली और काव्य कला का ज्ञान प्राप्त हुआ।

इनकी वाणी मधु-रस-सिक्त थी, हृदय प्रेम-रस पूर्ण था, विचार स्वतन्त्र और उदार थे। व्यक्तित्व प्रभावशाली था। जिस समय ये भाव विह्वल होकर गाते थे लोग रसमग्न हो जाते थे। इनके कई शिष्य थे, मित्र थे, प्रशसक थे। इसलिए स्वयं साधन रहित होते हुए भी ये बडे ठाट बाट मे रहते थे। ढाके के मलमल का अंगरखा तथा नागपुर की रेशमी किनारे की धोती पहनते थे। लम्बे बाल रखते थे और सुगन्धित तेल लगाते थे। अधर पान के रग मे रंगे रहते थे। कभी-कभी भाँग की मस्ती का आनन्द भी लेते थे। धुली हुई और अच्छी तरह से घडी की हुई नडियाद की लाल रंग की पगडी पहन कर ही घर से निकलते थे।

दयाराम जन्मजात प्रेमी थे। रतनबाई नाम की एक बाल विधवा सोनारिन से इनका दिल लग गया। वह भी इन्हे सच्चे दिल से प्यार करती थी। जीवन पर्यन्त इनकी सेवा करती रही। एक बार ठुकराई जाने पर भी रतनबाई अपने हृदय से विवश होकर फिर लौट आयी और अपने प्रिय दयाराम की सेवा करने लगी। ब्राह्मण और सोनारिन के इस विचित्र मिलन को दयाराम अपने पूर्वजन्म का सम्बन्ध मानते थे और आने वाले जीवन मे पति-पत्नी के रूप मे मिलने की कामना व्यक्त करते थे। ये सनातनी ब्राह्मण थे इसलिए अपने हाथ से ही भोजन पकाते थे—अपने लिए और अपनी प्रेमिका, रतनबाई के लिए भी। ६ फरवरी सन् १८५३ ई० को यह रसिक शिरोमणि कवि चिर निन्द्रा मे डूब गया।

दयाराम को किसी का भी नियन्त्रण स्वीकार नहीं था—न व्यक्ति का, न समाज का। ये बड़े ही स्वाभिमानी थे। कृष्ण के अतिरिक्त किसी के भी सामने मस्तक झुकाने के लिए तैयार नहीं थे—

एक वर्यो गोपीजन वल्लभ, नही स्वामी बीजो;
नही स्वामी बीजो रे, मारे नहीं स्वामी बीजो। एक०

दयाराम का साहित्य भी प्रेमानन्द और शामल के साहित्य की तरह ही विपुल है। श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी जी ने इनकी कृतियों का इस प्रकार से वर्गीकरण किया है :—

(१) वल्लभ के पुष्टिमार्ग से सम्बन्धित साहित्य—'वल्लभनो परिवार' 'चौरासी वैष्णवनु' ढोला,' 'भक्ति पोषण'। साहित्य की दृष्टि से इन कृतियों का महत्व कम है।

(२) पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त तथा दर्शन से युक्त—'रसिक वल्लभ' तथा हिंदी में 'सतसैया'।

(३) पुराणिक आख्यान—'अजामिलाख्यान' 'वक्त्रासुराख्यान,' 'सत्यभामाख्यान' 'ओखाहरण,' 'दशमलीला' तथा 'रासपचाध्यायी'।

(४) प्रकीर्णक रचनाएँ—'नरसिंह मेहतानी हुंडी,' षड्ऋतु वर्णन; तथा 'नीतिभक्तिना पदो'।

(५) 'गरबी संग्रह'।

दयाराम अपनी गरबियों के लिए अधिक प्रसिद्ध है। नरसिंह मेहता, भालण, प्रेमानन्द स्वामी आदि कितने कवियों ने गरबी की रचना की है किन्तु दयाराम ने गरबी को एक विशिष्ट काव्य प्रकार के रूप में अपनाया और विकास किया। गरबी को आकारसौष्ठव और स्वरूप सौन्दर्य तो दयाराम से ही मिला। किसी गरबी में राधा की उक्ति कृष्ण के प्रति है और किसी में कृष्ण की उक्ति राधा के प्रति है। किन्तु कुछ गरबियों में तो राधा तथा कृष्ण का संवाद बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है। कहीं राधा तथा कृष्ण का रूठना और मनाना है। विप्रलंभ और संयोग शृङ्गार का वर्णन ही मुख्य है। शृङ्गार के चित्रण में जितना कुछ भाववैविध्य संभव है दयाराम ने प्रस्तुत किया है। कृष्ण के प्रति राधा के हृदय के भावों को इस कवि ने बहुत ही सुकुमारता, विविधता तथा निपुणता से चित्रित किया है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा :—

नन्दनन्दन अलबेलडो रे, एनां वहालां लागे छे वेण ;
सांभल सही मारी

घेलुं कीधुं गोकुलियुं रे, एनां कांमणगारां नेण ;
सांभल सही मारी
नटवर मुन्दर शामलो रे, मनगमतो मोहनलाल ;
सांभल सही मारी
हृदय सरसो लेइ लपटावुं, मुने एवुं लागे छे वहाल ;
सांभल सही मारी

अर्थात् मेरी सखी सुन ! नन्दनन्दन अलबेला है और उसकी वाणी प्यारी है। उसने गोकुल को पागल बना दिया है क्योंकि उसके नयनों में मोहनी है। वह सुन्दर साँवलिया नटवर है तथा मनोहर है। वह मुझे इतना अच्छा लगता है कि हृदय से लपटाने की इच्छा होती है।

हुं शुं जाणु जे वहाले मुजमां शुं दीठुं ?
वारे-वारे सामुं भाळे मुख लागे मीठुं। हुं शुं जाणुं०
हुं जाउं जल भरवा त्यां पुंठे-पुंठे आवे,
वगर बोलाव्यो वालो व्हेलडुं चडावे। हुं शुं जाणु०
वढुं ने तरछोडुं तोये रीस न लावे;
कांइ-कांइ मिषे मारे घेर आवी बोलावे। हुं शुं जाणुं०
दूर थकी देखी वालो मुने दोउयो आवी दोटे;
पोतानी माला काढी पहेरावे मारी कोटे। हुं शुं जाणुं०
मने एकलडी देखी त्यां मारे पालवे लागे
रंक थइ कांइ-कांइ मारी पासे मागे। हुं शुं जाणुं०
मुने ज्यां जाती जाणे त्यां ए आवी ढूंके,
बेनी ! दयानो प्रीतम मारी केड नव मूके। हुं शुं जाणुं०

अर्थात्—मैं क्या जानूं कि वह मुझमें क्या पाता है ? वह बार-बार मेरी ओर ताकता है, मेरा मुख उसे मधुर लगता है। मैं जल भरने जाती हूँ, वह पीछे-पीछे आता है। बिना कहे ही गगरी उठवाता है। मैं झिड़कती हूँ लेकिन उसे बुरा नहीं लगता है। किसी न किसी बहाने वह मेरे घर पहुँच जाता है। दूर से ही देखकर वह दौड़-कर मेरे पास आता है और अपनी माला मेरे गले में डाल देता है। अकेली पाकर मेरे पैरों पर गिर पड़ता है और अकिंचन-सा न जाने क्या-क्या माँगता है। हे मेरी बहिन ! मैं जहाँ कहीं भी जाती हूँ, उसी को पाती हूँ। वह दया का स्वामी मुझे चैन नहीं लेने देगा—मैं क्या जानूँ कि वह मुझमें क्या पाता है।

दयाराम की गरबिग्रों में एक ग्रनिर्वचनीय मर्मस्पर्शी मिठास है, कोमलता है। दयाराम की भाषा सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को कलात्मक ढंग से व्यक्त करने में पूर्ण रूप से समर्थ है। शब्द-चयन सुरुचिपूर्ण है। इनकी गरबिग्रों में भाव, ग्रर्थ, ध्वनि तथा संगीत का ग्रदभुत समन्वय मिलता है।

जे कोइ प्रेम ग्रंश ग्रवतरे, प्रेमरस तेना उरमां ठरे।

: ४ :

अर्वाचीन गुजराती साहित्य—१

[सन् १८५० ई० से आज तक]

सुधारक युग (१८५० से १८८५ ई० तक)

एक : सामान्य परिचय

भारत में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् से गुजराती साहित्य में भी नए युग का आरम्भ होता है। सन् १६८७ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रधान कार्यालय सूरत से हट कर बम्बई आया। सन् १८१८ ई० में खडकी (किरकी) का युद्ध हुआ। इस युद्ध में मराठे पराजित हुए। अंग्रेजों का राज्य स्थापित हुआ। गुजरात को दीर्घ काल तक के लिए शान्ति मिली। बम्बई राजधानी बनी। फिर तो यह पश्चिमी भारत का सर्वश्रेष्ठ नगर पूर्व और पश्चिम का मिलन-केन्द्र बना।

मुगल काल में भी भारत के बड़े बड़े गाँवों में पाठशालाएँ और मदरसे थे। सम्पन्न परिवार के बच्चे घर पर ही शिक्षा पाते थे। मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अध्ययन में हमने देखा है कि पुरानिक तथा गागरिया भट जनता को अपनी प्राचीन गौरव गाथा से परिचित करा रहे थे। इस युग तक आते आते इस परम्परा का भी अन्त हो चुका था और संघर्षों में फँसे औरंगजेब ने तो शिक्षा की तरफ ध्यान ही नहीं दिया। इस प्रकार शिक्षा तथा संस्कृति के प्रचार-प्रसार की देशी व्यवस्था उखड़ गयी। अंग्रेजों ने नए सिरे से, नए ढंग पर, अपने स्वार्थ के लिए शिक्षा का प्रचार करना प्रारंभ किया।

सन् १८२० ई० में 'दि बाम्बे एज्युकेशन सोसाइटी' की स्थापना हुई। बम्बई में चार, सूरत में एक, तथा बड़ोच में एक स्कूल खोलने की व्यवस्था की गयी। सन् १८२५ ई० में 'दि नेटिव एज्यूकेशन सोसायटी' नाम से उक्त सोसायटी की एक शाखा और खुली। गुजराती भाषा में पाठ्य पुस्तकों की रचना होने लगी। सन् १८२७ ई० में बम्बई के गवर्नर, श्री माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिस्टन के अवकाश ग्रहण

के उपलक्ष्य में 'दि बाम्बे एज्यूकेशन सोसायटी' की ओर से उत्सव मनाया गया। चन्दा इकट्ठा करके 'एलिफन्स्टन इन्स्टीच्यूशन' की स्थापना की गयी। अंग्रेजी भाषा, कला, विज्ञान तथा पाश्चात्य साहित्य की शिक्षा के लिए व्यवस्था हुई। सन् १८५६ ई० में उक्त संस्था दो भागों में—एल्फिन्स्टन हाईस्कूल तथा एल्फिस्टन कालेज में—विभक्त हो गयी। दादाभाई नौरोजी जैसे देश रत्नों को पैदा करने का श्रेय इसी संस्था को प्राप्त है। नयी शिक्षा से विभूषित उत्साही युवकों ने शिक्षा प्रचार के लिये कई संस्थाओं की स्थापना की। सन् १८५७ ई० में 'बम्बई विश्वविद्यालय' की स्थापना हुई।

लेकिन इसके बहुत पहले सन् १८२२ ई० में श्री फर्दुन्जी मर्जवान जी (१७८७-१८७४) ने 'मुम्बई समाचार' (बाद में 'दि बाम्बे समाचार') निकाला। रन्छोडभाई गिरधरभाई (१८०३-१८७३ ई०) भी एक उत्साही व्यक्ति थे। इन्होंने कई विषयों की पाठ्य पुस्तकों की रचना की। सन् १८५१ ई० में इन्हीं की अध्यक्षता में 'बुद्धिवर्द्धक सभा' की स्थापना हुई तथा 'बुद्धिवर्द्धक' नाम से एक मासिक पत्रिका निकली। नाम से ही काम का परिचय मिल जाता है। एक दूसरे उत्साही व्यक्ति, मेहताजी दुर्गाराम (१८०९-१८७८ ई०) बम्बई छोड़ कर सन् १८२६ ई० में अपने जन्म स्थान सूरत में आकर रहने लगे। जाति के नागर ब्राह्मण होते हुए भी इस साहसी व्यक्ति ने अंध विश्वासों, भूत प्रेत संबंधी चमत्कारों तथा सामाजिक बुराइयों को उखाड़ फेंकना प्रारंभ किया। विज्ञान संबंधी कुछ पुस्तकें लिखीं 'पुस्तक प्रचारक मंडली' की स्थापना की; कुछ सहकारियों को संगठित किया तथा सूरत के बाहर एक प्रेस भी खोला। समाज सुधार के लिए मेहताजी ने सन् १८४४ ई० में 'मानव धर्म सभा' की स्थापना की। सन् १८४६ ई० में एक अंग्रेज नागरिक, एलेकजंडर किन्लोक फार्बस अहमदाबाद में सहायक जज नियुक्त हुए। फार्बस के हृदय में इस देश के प्रति ममता थी। इन्होंने गुजराती का अध्ययन किया। कवि दलपतराम को अपना मित्र और सहकारी बनाया। सन् १८४८ ई० में इन्होंने 'दि गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी' की स्थापना की तथा अपनी पांडुलिपियों से एक पुस्तकालय का श्रीगणेश भी किया। सन् १८५० ई० में इसी संस्था के द्वारा 'बुद्धि प्रकाश' नामक एक पाक्षिक पत्र निकाला गया, तथा दूसरे वर्ष एक प्रेस भी खड़ा किया गया श्री फार्बस की बदली जब सूरत के लिए हुई तब इन्होंने वहाँ भी 'सूरत समाचार' निकाला।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा-प्रचार तथा समाज सुधार के लिए कई संस्थाएँ खड़ी हुईं और ज्ञान-ज्योति लेकर कई पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। इस नए प्रकाश में अंगड़ाई लेकर गुजरात उठ खड़ा हुआ, इस ज्योति के सामने नतमस्तक

हुआ और अपनी प्राचीन गौरव पूर्ण परम्परा को हृदय में छिपाये पश्चिम की ओर चकित होकर देखने लगा।

दो : प्रमुख कवि

कवि दलपतराम डाह्याभाई (१८२०–१८९८ ई०)—ये वढवाण के श्रीमाली ब्राह्मण थे। स्वामी नारायण सम्प्रदाय के संत कवि देवानंद से इन्होंने पिंगल तथा अलंकार शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था। १८५५ ई० में इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और 'दि गुजराती वर्नाक्यूलर सोसायटी' के सहायक मंत्री के पद को स्वीकार किया। बड़ी लगन से इन्होंने इस संस्था की सेवा की और 'बुद्धि प्रकाश' का सम्पादन किया। २३ वर्ष के उपरान्त अवकाश ग्रहण करने पर इस सोसायटी ने इन्हें २० रु० तथा इनकी दोनों पत्नियों चार-चार रुपया माहवारी पेंशन दिया। इन्हे अंग्रेजी भाषा का मामूली ज्ञान था वह भी श्री फार्बस के साथ का सुफल। पश्चिमी प्रभावित सुधार धारा से ये अलग हो रहे। सुधार चाहते तो ये भी थे और इनके साहित्य का उद्देश्य ही सुधार है किन्तु सामाजिक परिवर्तन विकास में देखना चाहते थे क्रान्ति में नहीं। इनका ब्रज तथा संस्कृत भाषा का ज्ञान अच्छा था।

दलपतराम ने नाना विषयों पर पद्य रचना की है। वर्णभेद, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, बाल विवाह के विरोध में तथा अन्य सामाजिक विषयों पर इन्होने कविताएँ लिखीं। 'विजयक्षमा' 'हंसकाव्य शतक' 'हुन्नर खानती चढाई' 'गमारबावनी' 'ऋतु वर्णन' 'संप लक्ष्मी संवाद' 'जादवास्थली' 'वेनचरित्र', 'फार्बस विलास' 'फार्बस विरह' आदि इनकी काव्य कृतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त दो नाटकों—'लक्ष्मी नाटक' तथा 'मिथ्याभिमान नाटक' तथा कुछ सरस गरबियों की भी रचना की है।

'हुन्नर खाननी चढाई' 'वेन चरित्र' 'फार्बस विरह' ये तीन इनकी अच्छी कृतियाँ मानी जाती हैं। 'हुन्नर खाननी चढ़ाई' रूपक काव्य है। इसमें कवि ने विदेशों से आने वाली वस्तुओं को भारतीय कला तथा उद्योग पर आक्रमण के रूप में दिखाया है। हुन्नर राजा, यत्र मंत्री, मादर पाट (मोटे कपड़े का नाम) सेनापति तथा विदेश से आने वाली वस्तुएँ लश्कर हैं। यह काव्य नवीन काव्य-वस्तु का ही परिचायक नहीं है बल्कि स्वदेशीवाद की प्रथम अभिव्यक्ति भी है। 'वेन चरित्र' विधवा विवाह पर लिखा गया आख्यान काव्य है। करुण तथा हास्य रस से पूर्ण है। यह समाज सुधार की दृष्टि से उपयोगी काव्य है। 'फार्बस विरह' दलपतराम की श्रेष्ठ कृति मानी जाती है। अपने शुभ चिंतक मित्र फार्बस के अवसान पर कवि का हृदय रो उठा था। उसी दुःख में कवि ने 'फार्बस विरह' नामक आत्म लक्ष्यी (Subjective) काव्य लिख डाला। यह काव्य न केवल वस्तु की दृष्टि बल्कि शैली की दृष्टि से भी

काव्य की नई धारा का सूचक है। प्रगाढ़ मित्रता की अमर गाथा के रूप में इस कृति का विशेष स्थान है।

इनके अतिरिक्त दलपतराम ने गीतों, पदों, गरबियों, छप्पाओं आदि सैकड़ों छोटी-छोटी कविताओं की रचना की है। इनके कुछ मुक्तक काव्य तथा कला की दृष्टि से उच्च कोटि के बन पड़े हैं। दलपतराम पिंगल, रस तथा अलंकार के पंडित थे। ब्रज, संस्कृत तथा मध्यकालीन गुजराती साहित्य से परिचित थे। छंदों पर इनका प्रशंसनीय अधिकार था। अनेक छंदों का प्रयोग किया है। प्रासानुप्रास अन्तर्यमक, शब्दश्लेष, अर्थश्लेष तथा कुछ अन्य अलंकारों का चमत्कारपूर्ण प्रयोग इन्होंने अधिक किया है। शब्द तथा अर्थ का चातुर्य इनकी कविता में काफी मिलता है। उपदेश दलपतराम की कविता का दूसरा खास लक्षण है। उपदेश रहित कविता इनके लिए कविता नहीं थी। इसलिए इन्होंने अपनी कविता में दृष्टांत, कटाक्ष, वक्रोक्ति आदि के सहारे उपदेश दिया है। इनकी भाषा शैली अत्यन्त सरल है। न कहीं अस्पष्टता है और न कहीं घुमाव है। इनकी कविता साधारण जनता के लिए है कुछ सहृदय रसिकों के लिए हो नहीं है। इसलिए इनकी कविता अधिक उच्चकोटि की न होते हुए भी जनप्रिय बनी। माँ सरस्वती के इस सच्चे उपासक ने साहित्य के क्षेत्र का विस्तार किया। अनेक छोटे मोटे विषयों को काव्य का विषय बनाया। अपनी बालोपयोगी शैली के लिए दलपतराम गुजराती साहित्य में अमर रहेंगे।

नर्मदाशंकर लालशंकर दवे (१८३३-१८८६)—ये सूरत के नागर ब्राह्मण थे। वीर नर्मद के नाम से हीं अधिक प्रसिद्ध थे। बचपन में लजीले, गंभीर तथा ईश्वर भक्त थे। इन्हें प्राथमिक शिक्षा सूरत में तथा माध्यमिक शिक्षा बम्बई के एल्फिन्स्टन इंस्टींट्यूट में प्राप्त हुई। ये पढ़ने में तेज थे। किन्तु नन्हीं पत्नी के साथ दाम्पत्य जीवन बिताने के लिए सत्रह साल के नर्मद को सूरत जाना पड़ा। १८५३ ई० में पत्नी के मरने के बाद फिर बम्बई आए और इतिहास तथा अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन में लग गए। पढ़ाई के साथ-साथ ये सुधार के कामों में भी बड़े उत्साह के साथ हाथ बटाते थे। कुछ उत्साही युवकों के साथ 'बुद्धिवर्द्धक सभा' की स्थापना की। महात्वाकांक्षी नर्मद को कालेज की शिक्षा के साथ साथ कविता लिखने का भी शौक पैदा हुआ। फिर पढ़ाई छोड़ कर बम्बई के एक स्कूल में शिक्षक बने। किन्तु कहाँ कविता कामिनी का सरस संग और कहाँ स्कूल का शुष्क वातावरण। नौकरी छोड़ दी और साहित्योपासना में ही जीवन व्यतीत कर देने का दृढ़ संकल्प किया। अपनी इस प्रतिज्ञा के निर्वाह करने में वीर नर्मद को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अन्त में हारकर दो साल (१८८२-८५) के लिए नौकरी की। किन्तु तीसरे साल इस महाकवि ने नौकरी को छोड़कर मृत्यु को वरण किया।

स्वाभिमान, सत्यप्रियता, न्याय प्रेम, निर्भीकता आदि वीर नर्मद के मुख्य गुण थे। ये बड़े ही उग्रवादी सुधारक थे। सन् १८५६ ई० में इन्होंने दूसरा विवाह किया था। किन्तु कुछ समय के बाद सुधार के नशे में अपनी ही जाति की एक विधवा से भी विवाह कर लिया। आगे बढ़ने पर एक विधवा को और आश्रय दिया। १८६६ ई० में उससे विवाह भी कर लिया। जाति से बाहर कर दिये गये। लेकिन कोई चिन्ता नहीं सुधार का शौक तो पूरा हुआ। प्रेमी कवि ने इस सामाजिक बहिष्कार को बड़े दर्प के साथ स्वीकार किया था। वीर नर्मद एक प्रकार से पश्चिमी संस्कृति के पुजारी थे। जवानी में पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित होकर बड़े जोश के साथ क्रांति की मशाल लेकर दौड़ पड़े। पुराने में से बहुत कुछ को जला डालना चाहा। आगे बढ़ने पर कुछ ठोकरें लगीं, अनुभव हुआ। आखिर जिस देश की मिट्टी से बने थे उसी की ओर फिर मुड़े। प्रेम शौर्य की प्रतिमूर्ति नर्मद जीवन की उतरती अवस्था में धीर, गंभीर और धार्मिक बन गए थे। इनके इस परिवर्तन की ध्वनि 'धर्म विचार' में मिलती है।

नर्मद ने 'पिंगल प्रकाश,' 'अलंकार प्रवेश' 'रस प्रवेश,' 'नायिका विषय प्रवेश' आदि की रचना की। बड़े परिश्रम से 'नर्मकोष' नाम से गुजराती भाषा का कोष प्रकाशित किया। पौराणिक कथाओं की जानकारी के लिए 'नर्मकथा कोष' भी प्रकाशित किया। इनके निबन्ध 'नर्मगद्य' में संग्रहीत है तथा कविताएँ 'नर्म-कविता' में। सन् १८८५ ई० में 'धर्म विचार' अलग से प्रकाशित हुआ। 'द्रोपदी-दर्शन,' 'रामजानकी दर्शन,' 'सार शकुन्तल' 'सीताहरण' आदि इनके नाटक हैं। 'मारी हकीकत' नाम से अपनी कहानी लिखी है। 'राज्य रंग' नाम से विश्व इतिहास लिखने की कामना पूरी न हो सकी। एक महाकाव्य लिखने का प्रयत्न भी किया था।

इन पुस्तकों से ही नर्मद की रचना-शक्ति का परिचय मिल जाता है। अँग्रेजी तथा संस्कृत के अध्ययन से उनके अन्दर एक नई सर्जन शक्ति पैदा हुई। इनका काव्य आत्मलक्ष्यी प्रणयभावना, प्रकृति वर्णन तथा देश प्रेम से पूर्ण है और गद्य के तो ये जनक कहे जाते हैं। गद्य में नर्मद ने निबन्ध, चरित्र, इतिहास, आत्मकथा नाटक, संवाद, विवेचन तथा पत्र संपादन आदि बहुत कुछ लिखा है। इनके पूर्व भी गद्य में लिखा गया है किन्तु गद्य को शिष्ट भाषा तथा भावावेश की शैली तो नर्मद से मिली।

नर्मद ने प्राचीन पद्धति में भी कविता की रचना की है और नवीन पद्धति में भी। अर्वाचीन साहित्य में शुद्ध आत्मशील काव्य शैली का आरम्भ नर्मद से ही होता है। ये कभी धीरा भगत के पदों को गाते थे और ज्ञान, वैराग्य, नीति बोध आदि विषयों पर पद रचना करते थे। 'गोपीगीत' 'रुक्मिणी हरण' पुराने ढंग पर ही

लिखी गयी हैं। देश प्रेम, सुधार, प्रकृतिवर्णन, प्रणय आदि को नयी शैली में व्यक्त किया गया है। 'वैधव्य चरित्र' तथा 'विधवा विरह' कविताओ का सम्बन्ध विधवा के दुःख भरे जीवन से है। 'वनवर्णन' 'प्रवास वर्णन' तथा 'ऋतु वर्णन' में प्रकृति प्रेम व्यक्त हुआ है। 'हिन्दुओनी पडती' में देश दशा का चित्रण है। कवि पूछता है—हमारा देश प्रेम और देशाभिमान कहाँ चला गया :—

देश प्रीत अहंकार, छुपां सूतां कहां आजे ?
× × × ×
बिना देश अभिमान देश उत्कर्ष न था ये;
देश रान समशान, जेहवो खावा धाये।
राज समन्धी ऐक्य, नथी अहिना लोकोमां;
जाति बन्धनो खुब, जनो वाधोना मोमां।

रात तो है लेकिन प्रभात का आना भी निश्चित है। कवि उल्लास में गा उठता है :—

जय जय गरवी गुजरात।
जय जय गरवी गुजरात। दीपे अरुणु प्रभात,
ध्वज प्रकाशशे झलललल कुसुंवी, प्रेमशौर्य अंकीत
तुं भणव-भणव निज संतति सउने, प्रेमभक्तिनी रीति
उंचो तुज सुन्दर जात।
× × × ×
ते अणहिल वाडना रंग,
ते सिद्धराज जयसिंह;
ते रंग थकी पण अधिक सरम रंग, थशे सत्वरे मात,
शुभ शकुन दःसे मध्याह्न शोभशे, वीती गइ छे रात—
जन घूमें नर्मदा साथ,
जय जय गरवी गुजरात।

प्रिया के प्रेम में उन्मत्त कवि के भावुक हृदय का गान भी गुजराती साहित्य के लिए सर्वथा नवीन था :—

वाहाली तें घेलो कीधो रे, प्रीत जुवंती।
भणवुं, गणवुं, रलवुं सीधुं, छोड़ी में तो सहु दीधुं
तारुंज नाम लीधुं रे।
संसार ने हुं भुल्यो, प्रीतडी रसे फुल्यो
नीहाली मुखडुं भूल्यो रे।

अर्थात् प्रिये, तुम्हारे प्रेम ने मुझे पागल बना दिया है। मैंने अध्ययन और

धन छोड़ा, केवल तुम्हारा नाम जपने के लिये। प्रीतिरस पानकर इस संसार को भूल गया। तुम्हारा मुख देखकर उल्लास से नाच उठा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गद्य तथा पद्य में साहित्य की धारा को नई दिशा में मोड़ने का श्रेय नर्मद को ही प्राप्त है। वीर नर्मद गुजराती के भारतेन्दु हैं।

नवलराम लक्ष्मीराम पंड्या (१८३६-१८८८ ई०)—सूरत की नागर ब्राह्मण जाति में इनका जन्म हुआ था। सूरत में ही प्रारंभिक शिक्षा मिली। आगे की शिक्षा के लिए बम्बई आए किन्तु अनुकूल अवसर न मिलने से मैट्रिक भी न कर सके। फिर सूरत की एक शाला में शिक्षक बने। ये थे बड़े ही जीवट के आदमी। साहित्य का अध्ययन बराबर चालू रखा। नर्मद के अंतरंग मित्र थे। सूरत के ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल बने। इसके बन्द होने पर अहमदाबाद के ट्रेनिंग कालेज के वाइस प्रिंसिपल बने। किन्तु अन्त में राजकोट के ट्रेनिंग कालेज में फिर प्रिंसिपल के पद का भार संभाला। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में इन्होंने बहुत कुछ किया। ये गुजरात के विद्या गुरु माने जाते हैं।

दलपत तथा नर्मद की अपेक्षा नवलराम की साहित्यिक कृतियाँ कम हैं किन्तु जो कुछ भी हैं वे ठोस हैं और महत्वपूर्ण हैं। इनकी रचनाएँ 'नवल ग्रन्थावली' भाग १ तथा भाग २ में संग्रहीत हैं। इनका 'इंग्लैंड नो इतिहास' इस विषय का गुजराती में प्रथम स्वतन्त्र ग्रन्थ है। 'भटनुं भोपालुं' नाम से फ्रेंच नाट्यकार मोलिएर के 'मॉक डाक्टर' का रूपांतर है। इस प्रहसन में नवलराम ने गुजराती जीवन को इस ढंग से झलकाया है कि यह विदेशी नाटक का रूपांतर मालूम ही नहीं पड़ता। 'वीरमती' (१८६६) एक ऐतिहासिक नाटक है। इसकी कथा वस्तु फार्बस साहब की 'रासमाला' से ली गई है। लेखक ने परमार वंश के राजा जगदेव का दंतकथा मिश्रित जीवन प्रसंग लेकर इस नाटक की रचना की है। 'कवि जीवन' नाम से अपने मित्र नर्मद का जीवन चरित्र लिखा। सन् १८६७ ई० से ही इनके समीक्षात्मक निबंधों का प्रकाशन आरंभ हो गया था। इन निबंधों से ही गुजराती साहित्य में प्रौढ़ समीक्षा की परम्परा कायम हुई। यद्यपि इनके पूर्व नर्मद ने कुछ आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं किन्तु शास्त्रीय पद्धति पर साहित्य समीक्षा का आरंभ नवलराम से ही होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में काम करने के कारण इनकी वाणी में संतुलन आ गया था। किसी लेखक की कमजोरी की ओर इशारा भी करते थे और विकास का उचित मार्ग भी दिखाते थे। मामूली लेखक के प्रति भी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते थे। उसे आगे बढ़ने के लिए बराबर उत्साहित करते थे। बात यह है कि नवलराम ने संस्कृत तथा अंग्रेजी के समीक्षा शास्त्र का अध्ययन किया था। इसलिये आलोचना के शास्त्रीय दृष्टिकोण का इनमें अच्छा विकास हुआ था। इन्होंने शुद्ध तात्विक सिद्धान्त चर्चा भी की है और ग्रन्थावलोकन (Review) भी। 'काव्य शास्त्र संबंधी

विचारो', 'मनना विचारो', 'हास्य अने अद्भुत रस', 'देशी पिंगल' आदि इनके समीक्षा-शास्त्र संबंधी निबन्ध हैं।

संक्षेप में नवलराम तटस्थ समीक्षक थे, विचारक और पंडित थे, सुधारक तथा कवि थे। 'बाल लग्न बत्रीशी' तथा 'बालगरबावली' इनकी समाज-सुधार संबंधी पुस्तकें हैं। इनकी आलोचना-शैली के परिचय के लिए एक उदाहरण अप्रासंगिक न होगा। लल्लू नाम के एक असफल नाटककार को व्यंग्य और विनोद के स्वर में कविता लिखने की सूचना देते हैं। 'भाई लल्लू ने म्हारी सलाह छे के नाटक फाटक न चेटक छोडि छूटक कविता लखे।' इस वाक्य से विदित होता है कि ये अपने कर्तव्य का निर्वाह कितनी दृढ़ता से कर रहे थे।

नंदशंकर तुलजाशंकर मेहता (सन् १८३५-१९०५ ई०)—इनका जन्म सूरत में वडनगरा नागर ब्राह्मण जाति में हुआ था। स्कूल की शिक्षा पूरी करके अध्यापक बने। किन्तु बाद में सरकारी विभाग में ऊँचा पद प्राप्त किया।

शिक्षा विभाग के एक अंग्रेज अधिकारी रसेल साहेब की प्रेरणा से नंदशंकर ने 'करणघेलो' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा। गुजराती साहित्य का यह प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास (नवल कथा) है। करण बघेला गुजरात का अंतिम हिन्दू राजा था। करण बघेलो अपने मन्त्री माधव की पत्नी रूपसुन्दरी का हरण करता है। बेचारा माधव क्रोध से पागल हो उठा। लेकिन कर ही क्या सकता था? भागा दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के पास। अलाउद्दीन गुजरात पर आक्रमण करता है। हिन्दू राजाओं से करण को कोई सहायता नहीं मिलती है। करण हार कर भाग खड़ा होता है। इसके बाद बागलाण के किले में करण का दुःखद अन्त होता है।

यह उपन्यास ऐतिहासिक तो है लेकिन इसमें सूरत के तत्कालीन जीवन का प्रतिबिम्ब भी है। इस पर सुधारक युग का भी प्रभाव है। अवसर मिलने पर लेखक उपदेश देने से नहीं चूका है। चरित्र-चित्रण तथा कला की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत ही साधारण कोटि का है, किन्तु प्रकृति वर्णन मनोहर है। संध्या, प्रभात, वर्षा, नदी आदि प्राकृतिक रूपों के चित्रण से यह कृति सुन्दर बन पड़ी है। अनेक कमजोरियों के होते हुए भी यह उपन्यास अपने समय में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इसका मराठी में अनुवाद भी हुआ। इसी के अनुकरण पर 'राणकदेवी', 'वनराज चावड़ा', 'सधराजेसंग' आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये।

भोलानाथ साराभाई दिवेटिया (१८२२-१८८६)—अहमदाबाद के बडनगरा नागर ब्राह्मण थे। सब जज के कार्यभार को सम्हाले थे। भक्त आदमी थे। इन्होंने प्रार्थना समाज की स्थापना की। ईश्वर एक है और निराकार है। ऐसे ईश्वर को मानसिक उपासना के लिये प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। भोलानाथ आधुनिक ढंग के भक्त थे। इनके काव्य में मनुष्य की निर्बलता का गान है। सर्वशक्तिमान ईश्वर

की कृपा पाने की कामना है।—'दया सिन्धु तारे वारणे पुकारूं, दीन बाल।' 'ईश्वर प्रार्थना माला' में इनकी कविताएं संग्रहीत हैं। इनकी कविताएं भावार्द्र, लयमधुर तथा सौष्ठवपूर्ण हैं।

मराठी के तुकाराम की अभंग शैली में रचित इनकी कविताओं का संग्रह 'अभंग माला' है। इस संग्रह की कविताओं में कवि की कल्पना की विशालता और भावना की तीव्रता का परिचय मिलता है।

महीपतराम नीलकंठ (१८२९-१८९१)—ये सूरत के वडनगरा नागर ब्राह्मण थे। बाद में अहमदाबाद में शिक्षा विभाग के उच्च पदाधिकारी बने। इन्होंने इंग्लैंड की यात्रा की। परिणाम यह हुआ कि जाति से बाहर निकाल दिये गये। ये समाज सुधारक तथा धर्म-जिज्ञासु थे। ये १९ ग्रन्थों के रचयिता माने जाते हैं। 'सास बहूनी लड़ाई' नामक पहला सामाजिक उपन्यास लिखा। 'वनराज चावडो' तथा 'सधराजे संग' नाम के दो ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे। साहित्य के इतिहास की दृष्टि से ही इनका कुछ मूल्य है। इन्होंने गुजरात में प्रचलित 'भवाई' (लोक नाट्य) का संग्रह किया है।

रणछोड़भाई उदयराम (१८३७—१९२३)—ये महुधा के खेडावाल ब्राह्मण थे। देशी राज में उच्चाधिकारी थे। ये अर्वाचीन गुजराती नाट्य साहित्य के जनक माने जाते हैं। इन्होंने संस्कृत के कई नाटकों का अनुवाद किया तथा शेक्सपियर के नाटकों की कहानी को गद्य में लिखा। 'ललिता दुःख दर्शक' 'जयकुमारी विजय', 'नल दमयन्ती', 'तारामती' आदि सामाजिक तथा पौराणिक नाटकों की रचना की। नर्मद के नाटकों में संवाद की प्रधानता है किन्तु नाट्य कला का अभाव है। रणछोड़ भाई के नाटकों में अभिनयक्षम नाट्यकला का अच्छा विकास हुआ है। समाज सुधार मानव कल्याण आदि इनके नाटकों का उद्देश्य था। 'भवाई' जन्य अश्लीलता से रंगमंच को मुक्त करने में इनकी कृतियों ने महत्वपूर्ण योग दिया है।

करसदास मूलजी ने नीति वचन, संसार सुख, इंग्लैंड मा प्रवास आदि ग्रन्थों की रचना की है। ये नर्मद के मित्र तथा सहायक थे।

हरगोविंददास कांटावाला ने 'प्राचीन काव्य माला' नाम से प्राचीन कवियों की कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया। 'अंधेरी नगरी नो गर्धव सेन' तथा 'बे बहनो' नाम की दो कहानियाँ लिखीं।

मनसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी ने संस्कृत के नाटकों का अनुवाद किया। ये संस्कृत के पंडित थे। इन्होंने संस्कृत प्रचुर भाषा का प्रयोग किया है।

व्रजलाल शास्त्री संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के पंडित थे। इन्होंने भाषा, न्याय, व्याकरण आदि विषयों पर शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की तथा 'गुजराती भाषा नो इतिहास' नामक ग्रन्थ में गुजराती भाषा के विकास क्रम को दिखाने का प्रथम प्रयास किया।

: ५ :

अर्वाचीन गुजराती साहित्य—२

पंडित युग (१८८५ ई० से १९२० ई० तक)

एक : सामान्य परिचय

अर्वाचीन साहित्य के प्रथम उत्थान में हमने देखा है कि दलपत, नर्मद तथा नवलराम आदि लेखकों ने साहित्य को नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त किया। लेकिन प्रधानता सुधार की ही रही। पाश्चात्य शिक्षा की चमक से चकित कुछ लेखकों को अपने देश का रूप रंग दिखाई ही नहीं पड़ा। उन्होंने प्राचीन की उपेक्षा की और नवीन में ही सौन्दर्य की खोज की। लेकिन इस द्वितीय उत्थान में गोवर्धनराम, मणिलाल, नरसिंहराव तथा नानालाल आदि विद्वानों ने प्राचीन और नवीन के संधि स्थल पर खड़े होकर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया।

राजनीति और धर्म के क्षेत्र में भी यह युग जागरण का युग है। १८५५ ई० में इंडियन नेशनल कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ। दादाभाई नौरोजी, लोकमान्य तिलक तथा सर फिरोज शाह मेहता ने लोगों के हृदय में राष्ट्र प्रेम पैदा किया। सन् १९०५ ई० में रूस पर जापान की विजय ने लोगों के हृदय में विजय की आशा जगा दी। बंग भंग के विरोध में स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती ने राष्ट्रीयता से युक्त प्रगतिशील हिन्दू धर्म का प्रचार किया तथा आर्य समाज जैसी समर्थ संस्था की स्थापना की। बंगाल में भक्तश्रेष्ठ रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानंद ने कर्मयोग का संदेश दिया। श्री अरविंद घोष ने स्वतंत्रता संग्राम के लिए गीता को शक्ति का स्रोत बताया।

विश्वविद्यालयों में शिक्षित व्यक्तियों के द्वारा प्रगतिशील विचारों का प्रचार हुआ। पाश्चात्य संस्कृति के संपर्क में आने से विकास में तीव्रता आई। आवागमन के साधनों तथा समाचार-पत्रों के द्वारा प्राचीन संस्कार ढीले पड़ने लगे। शिक्षित ने लड़कियों की शिक्षा की व्यवस्था की और विधवा विवाह का समर्थन किया। विदेश में शिक्षा पाकर लौटने वाले विद्यार्थियों के प्रति जातीय सहिष्णुता दिखाई जाने लगी। जाति संबंधी प्राचीन मान्यताएँ ढीली पड़ने लगीं। अब जाति एक सामाजिक संस्था के रूप में मानी जाने लगी। इस प्रकार इस युग में समन्वय का प्रयत्न दिखाई पड़ता है। समन्वय प्राचीन और नवीन का; पूर्व और पश्चिम का।

महाविद्यालयों में अंग्रेजी, संस्कृत तथा फारसी की शिक्षा पाने वाले स्नातकों

में समन्वय का विचार पैदा हुआ। गौरवपूर्ण अतीत के अध्ययन से आत्म-विश्वास जगा। नए-नए उद्योग धंधों का विकास हुआ। बड़े-बड़े शहर बसने लगे। नई शिक्षा से विभूषित युवक शहरों में आकर बसने लगे। पुरानी संयुक्त परिवार की पवित्र प्रथा उखड़ने लगी। व्यक्तिवाद का उदय हुआ। प्रेम-प्रधान-विवाह की महत्ता का समर्थन किया गया। जीवन के गूढ़ तथा मार्मिक प्रश्नों को समझने के लिए बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाया गया। बात यह है कि इस युग के अधिकांश लेखक पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों से परिचित थे, दर्शनशास्त्र के ज्ञाता थे इसलिए उनके साहित्य में भी उनका यह तत्वज्ञान व्यक्त हुआ है। धर्म जैसे गूढ़ तथा श्रद्धागम्य वस्तु को भी इस युग के विद्वानों ने बुद्धि की कसौटी पर कसने का प्रयत्न किया है। अतः इस युग को पंडित युग कहना समीचीन ही लगता है।

अंग्रेजी, फारसी तथा संस्कृत साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करके इस युग के लेखकों ने साहित्य के विभिन्न अंगों का विकास किया। पाश्चात्य साहित्य समीक्षा का प्रभाव इस युग के साहित्य पर काफी पड़ा। 'साहित्य जीवन की व्याख्या है' यह सिद्धान्त कुछ दार्शनिकता के साथ लेखकों के विचारों का आधार बना। नए उद्योग-धंधे, स्त्री शिक्षा, शहरी जीवन, कुटुम्ब व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक जागरण आदि का प्रतिबिम्ब साहित्य पर भी पड़ा। मध्ययुग के साहित्य का प्रधान सुर धर्म है—आत्म कल्याण है किन्तु इस युग के साहित्य का प्रधान सुर जीवन है—लोक कल्याण है। आत्म-कल्याण लोक-कल्याण में मिल जाता है। अंग्रेजी साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करके लेखकों ने उपन्यास (नवल कथा), कहानी (नवलिका), सॉनेट, लिरिक (उर्मिकाव्य) आदि साहित्य प्रकारों से गुजराती साहित्य के भंडार को भर दिया। संस्कृत के वृतों तथा काव्य रीतियों का भी प्रयोग हुआ। फारसी के प्रभाव से गजल तथा सूफीयाना ढंग की कविताएँ लिखी गयीं।

गुजराती का पंडित युग हिंदी के छायावाद युग से मिलता-जुलता है।

दो : प्रमुख कवि

गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी (१८५५—१९०७)—इनका जन्म नड़ियाद में नागर ब्राह्मण जाति में हुआ था। धार्मिक वातावरण में इनका बचपन बीता। शिक्षा पूरी करके वकालत आरम्भ की। किन्तु चालीस वर्ष की अवस्था में वकालत भी छोड़कर साहित्य सेवा में लग गये। इनका साहित्य परिमाण में विपुल है। इनकी प्रमुख कृतियाँ—'सरस्वतीचन्द्र' उपन्यास चार भागों में, 'साक्षर जीवन', 'लीलावती जीवन कला' (पुत्री का जीवन चरित); 'दयाराम नो अक्षर देह' (दयाराम के काव्य का परिचय); 'नवल जीवन' (नवलराम का जीवन चरित) 'स्नेहमुद्रा' (कविता); 'दि क्लासिकल पोयेट्स ऑफ गुजरात' (अंग्रेजी में); 'हृदयरुदितशतकम' (संस्कृत में)

'सरस्वती चन्द्र' गुजराती साहित्य की एक अद्वितीय कलाकृति है। इस

उपन्यास का नायक सरस्वतीचन्द्र एक सुन्दर युवक है। वह कुमुद नाम की एक सुन्दर, सुशील लड़की से प्रेम करता है। सौतेली माँ के इशारे पर पिता सरस्वतीचन्द्र को इस प्रेम के लिए डाँटते हैं। वह दुःखी होकर घर से भाग जाता है। मधुर और सुशिक्षिता कुमुद का विवाह प्रमादधन नाम के असंस्कारी व्यक्ति के साथ हो जाता है। कुछ समय के बाद कुमुद विधवा हो जाती है। सुन्दरगिरि के आश्रम में कुमुद साधुओं के सम्पर्क में आती है। वहीं संयोग से सरस्वतीचन्द्र भी आता है। दोनो एक दूसरे को हृदय से अभी भी प्रेम करते हैं। लेकिन कुमुद विधवा है। साधुओं के उपदेश से दोनों प्रेम के सूक्ष्म रूप का ज्ञान प्राप्त करते है। दोनों देश की सेवा में जीवन व्यतीत करने का संकल्प करते हैं। फिर कुमुद के अनुरोध पर सरस्वतीचन्द्र उसकी छोटी बहिन कुसुम से विवाह कर लेता है।

कथावस्तु तो बस इतनी ही है किन्तु अनेक अनुषंगी उपकथाओं तथा चर्चाओं के द्वारा लेखक ने कथावस्तु का अच्छी तरह से विकास किया है। इसमें मानव हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का चित्रण है। इस उपन्यास में समाज तथा देश का रसात्मक वर्णन है। जीवन संबंधी बातों का तर्कसंगत विवेचन है। बारह सौ पृष्ठों के इस विशाल ग्रन्थ में न केवल अर्वाचीन, पूर्व और पश्चिम की संस्कृति को मिलाने का प्रयास किया गया है बल्कि पूर्व की प्राचीन धारा भी मिलाई गयी है। यह त्रिवेणी संगम अभूतपूर्व है। जीवन और जगत के नाना प्रश्नों के उत्तर में लीन लेखक ने कहीं-कहीं उपन्यास कला की उपेक्षा की है। इसमें चिन्तन की प्रधानता है। एक विद्वान ने इसे 'एक उपन्यास नहीं बल्कि महान ग्रन्थ' कहा है और दूसरे ने इसे पुराण कहा है। कुछ भी हो यह उपन्यास गुजरात में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। व्यक्तिगत पत्रों में, व्याख्यानों में, साहित्यिक रचनाओं में इस उपन्यास से उद्धरण दिये गये। कुछ लेखकों ने इसकी भाषा शैली का अनुकरण करने का प्रयास किया था।

'स्नेहमुद्रा' गोवर्धनराम की लम्बी कविता है। इसकी कथावस्तु जटिल तथा अस्वाभाविक है। इस काव्य में प्रकृति वर्णन सुन्दर है। इसमें मानव हृदय का सरस स्नेह स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता हुआ दिखाया गया है। 'साक्षर जीवन' में पशुता को दबाकर क्रमशः मनुष्यता की ओर बढ़ने का विचार प्रस्तुत किया गया है। इसकी भाषा कठिन तथा शैली कृत्रिम है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है।

गोवर्धनराम की कृतियाँ लोककल्याण की भावना से पूर्ण हैं। इन्होंने अंग्रेजी तथा संस्कृत साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। ये नाना विषयों के पंडित थे, अच्छे विचारक थे तथा किसी भी बात के मर्म तक पहुँचने की कोशिश करते थे। इसके साथ-साथ इनमें उच्चकोटि की सर्जन शक्ति भी थी। इनके महिमा मंडित व्यक्तित्व का तथा साहित्य का गुजराती साहित्य पर काफी प्रभाव पड़ा।

मणिलाल नभुभाई द्विवेदी (१८५८-१८९८)—इनका भी जन्म नड़ियाद में हुआ था। इन्हें बम्बई तथा नड़ियाद में शिक्षा मिली थी। फिर ये भावनगर के सामलदास कालेज में अध्यापक बने। इनका गृह जीवन कष्टकर, व्यक्तिगत जीवन विमार्गी वासना से कलुषित तथा व्याधिग्रस्त था। ये वेदान्त के अच्छे पंडित थे, प्रतिभाशाली लेखक थे। इन्होंने चालीस वर्ष की अवस्था में ही बहुत कुछ लिखकर स्वर्ग की राह ली। इनकी पुस्तकों में 'आत्म निमज्जन', 'कान्ता', 'प्राण विनिमय', 'गुलाबसिंह', 'बालविलास' तथा 'सिद्धान्तसार' मुख्य हैं। इनके दार्शनिक तथा साहित्यिक निबन्धों का संग्रह 'सुदर्शन गद्यावली' है। वेदान्त दर्शन तथा संस्कृत साहित्य पर इनके अंग्रेजी भाषा में भी उच्चकोटि के निबन्ध हैं।

मणिलाल के काव्य का मुख्य विषय प्रेम है। कवि का विचार है कि प्रेम के सच्चे रूप को समझ लेने पर अद्वैत की अनुभूति कठिन नहीं रहती है। यह अद्वैत की अनुभूति ही मोक्ष है। यह अनुभूति केवल मन के द्वारा ही सम्भव है। लौकिक प्रेम प्रसंग के शब्दों में कवि ने अलौकिक प्रेम का गीत गाया है। दृष्टान्त के रूप में स्थूल सांसारिक सम्बन्धों का चित्रण कवि ने आत्मा परमात्मा के सूक्ष्म प्रेम की अभिव्यंजना के लिए किया है। कोई न माने यह और बात है। इस रहस्यवादी प्रवृत्ति के कारण कुछ कविताएँ कहीं-कहीं दुर्बोध हो गई हैं। इनकी शैली मधुर तथा प्रसाद गुण से पूर्ण है।

फारसी सूफियों के ढंग पर लिखी गई अपनी गजलों के लिए मणिलाल अधिक प्रसिद्ध हैं। सूफीवाद में परमात्मा माशूक—प्रेम पात्र है; भक्त आशिक—प्रेम करने वाला है। प्रतीकों के सहारे भक्त अपने इस अलौकिक प्रेम को व्यक्त करता है। वर्णन है—साकी, शराब तथा मयखाना का किन्तु इसका लाक्षणिक अर्थ गुरु, भक्ति तथा हृदय। मणिलाल केवल संस्कृत तथा फारसी शैली के ही नहीं अंग्रेजी शैली के भी एक उच्चकोटि के कवि थे। अंग्रेजी कविता के चिन्तन तत्व का प्रभाव इनकी कविता में विशेष रूप से दिखाई पड़ता है।

(१) दृग रस भर मोरे दिल छाई रही
छाई रही छलकाई रही।
झांख झपट निद्रा नव कांइ
पलक पलट अणखाई रही।

(२) 'गगने आज प्रेमनी झलक छाइ रे'।

(३) अनन्त युग उतर्या, हजी अनन्त आवीजशे।
सुअल्प जीवनी शी त्यां कथन योग्य कहाणी हशे।

इस कवि की दूसरी प्रसिद्ध कृति है—'कान्ता' नाटक। आत्मसमर्पण, दाम्पत्य प्रेम तथा स्वामिभक्ति के आदर्शों से युक्त यह करुणान्त नाटक है। इसमें

अंग्रेजी तथा संस्कृत की नाट्य रीतियों के समन्वय का प्रयत्न है। पात्रों का चरित्र चित्रण शेक्सपियर के ढंग का है किन्तु रचना संस्कृत के ढंग पर। इस नाटक में कविता का उचित प्रयोग हुआ है। कही-कही कवि ने प्राकृत वस्तुओं में लोकोत्तर सौन्दर्य की सृष्टि की है। कथावस्तु में इतिहास तथा कल्पना का योग है। 'गुलाबसिह' एक लाक्षणिक उपन्यास है। वेदान्त दर्शन के ज्ञाता मणिलाल ने इस उपन्यास में अपने तत्वज्ञान को कथा का रूप दिया है। यह कृति लिटन की 'जेनोनी' का गुजराती रूपान्तर है।

कवि मणिलाल आर्य विचारधारा के पोषक और प्रचारक थे। इन्हे पूर्व और पश्चिम की संस्कृति का ज्ञान था। इसलिए ये भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल अंग को सबसे ऊपर झलकाने में समर्थ हो सके थे। गुजरात ने अपने इस भावना सम्पन्न ज्ञानवीर नेता के महान संदेश को सुना और प्रेरणा प्राप्त की।

बालाशंकर उल्लासराम कंथारिया (१८५८-१८९८)—इनका जन्म नड़ियाद की नागर जाति में हुआ था। ये कवि दलपतराम को अपना काव्य गुरु मानते थे। ये ब्रज, संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेजी के अभ्यासी थे। फारसी के हाफिज के ढंग की गजलों की रचना की। 'क्लात कवि' नाम की कृति में संस्कृत साहित्य के ढंग पर ऋतु वर्णन है, शृंगार क्रीड़ा है और अलंकारों का चमत्कार है। कवि ने प्रकृति को अपनी भावनाओं के रंग में रँग कर देखा है।

> कवचिद् रंगे घेरे मरवर लहेरे ठमकती,
> कवचित् ज्योत्स्नामांही स्वरणमयि कान्ती झमकती,
> कवचित् प्राचीमांही शिरमणि धरीने रिझवता,
> कवचिद् अंधारामा प्रणतलय खेले खिजवती।

शृंगार क्रीड़ा का एक चित्र भी देखिए :—

> मने पूरूं तारा शशिरविस्तनोनुं स्मरण छे,
> अहा ! पूर्णिमाश्रे रमणिय प्रदोषे वन विषे,
> उघाडां भूकयां ता मदार्थ छकि नीरंचल करी,
> हरी ती तें मारी हृदयमतिने मोहित करी।

कवि माता का भक्त था। इसलिए इस कृति मे प्रिया, कविता तथा जगदम्बा को अनुलक्षित करके काव्य रचना की है। पाठक अपनी रुचि के अनुसार आनन्द ले सकता है।

नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया (१८५९-१९३७)—इनका जन्म अहमदाबाद में वडनगरा नागर जाति में हुआ था। ये बचपन से ही साहित्य तथा संगीत में रुचि रखते थे। इन कलाओं को सीखने के लिए इन्हे साधन भा मिला था। कालेज में विद्वानों का संग मिला। २१ वर्ष की उम्र में बी० ए० पास किया। अपनी योग्यता

से सहायक कलक्टर का पद प्राप्त किया। इस पद से अवकाश ग्रहण करने पर बम्बई के एल्फिस्टन कालेज में प्राध्यापक बने। महात्मा गांधी, अन्य गुजराती नेता तथा विद्वान इनका सम्मान करते थे। काका कालेलकर ने इन्हें गुजराती साहित्य के भीष्म पितामह कहा है। इनमें स्पष्ट विचार तथा सूक्ष्म दृष्टि का अच्छा विकास हुआ था। ये एक साथ ही कवि, भाषा शास्त्री, विवेचक तथा संस्मरण लेखक थे। इनकी कृतियाँ—(क) पद्य—कुसुममाला (१८८७), हृदय वीणा (१८९६), नूपुर झंकार, (१९१४), स्मरण संहिता (१९१५) तथा बुद्धचरित (१९३४) आदि। (ख) गद्य—मनोमुकुर—चार भागों में (१९२४), स्मरण मुकुर (१९२६), विवर्तलीला (१९३३) तथा अभिनयकला ; गुजराती भाषा तथा साहित्य—दो भाग (अंग्रेजी में—१९३२)।

नरसिंहराव की 'कुसुम माला' से ही नई कविता के युग का आरम्भ होता है। इसी में विषय, भाव तथा अभिव्यंजना की नवीनता का दर्शन होता है। नर्मद ने नई कविता का आरम्भ किया किन्तु नरसिंहराव की प्रतिभा ने उसे प्रौढ़ रूप दिया। इसी ओर लक्ष्य करके एक समीक्षक ने कहा है—"अर्वाचीन कविता—शकुन्तला के विश्वामित्र यदि नर्मद हैं तो नरसिंहराव कन्व है।" इसमें प्रकृति तथा प्रेम का काव्योचित चित्रण हुआ है। इसके बाद का काव्य संग्रह 'हृदय वीणा' तथा 'नूपुर झंकार' है। इनकी कविता पर अंग्रेजी के कवि वर्डस्वर्थ, शेली आदि का स्पष्ट प्रभाव था। प्रकृति का चित्रण कवि ने अपने दार्शनिक विचारों के रंग में रँग कर किया है। सुन्दर विशेषणों के द्वारा कवि ने प्रकृति की दिव्यता, भव्यता, रम्यता तथा गूढ़ता की व्यंजना की है। प्रकृति वर्णन में कवि का प्रयत्न केवल 'अर्थ ग्रहण' कराने का ही रहा है। उनके शब्दों से प्रकृति का परिचय मिलता है किन्तु रूप सामने नहीं आता। कविता को पढ़कर मन में प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुभूति नही जगती है। सारांश यह कि प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में संश्लिष्ट योजना द्वारा बिंब ग्रहण कराने का प्रयत्न कवि ने नही किया है।

चिन्तन तथा उर्मिप्रधान कविताओं में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। 'स्मरण संहिता' इनकी उत्तम कृति मानी जाती है। पुत्र की मृत्यु पर कवि का हृदय रो उठा। शोक से विह्वल हृदय ने इस कविता में अंग्रेजी की (करुण प्रशस्ति) के ढंग पर अपने को व्यक्त किया। निरूपण तथा वस्तु विधान की दृष्टि से यह कृति सफल है। कवि जन्म और मरण के रहस्यों को समझना चाहता है। कवि के लिए मृत्यु जीवन का अन्त नहीं बल्कि स्वयं मृत्यु का अन्त है।

मृत्यु मरी गयुं रे, लोल।

मृत्यु आत्मा के प्रवेश के लिए ईश्वर का मंगल द्वार खोलती है।

मंगल मंदिर खोलो, दयामय ! मंगल मंदिर खोलो !
जीवन बन अति वेगे वटाव्युं, द्वार उभो शिशु भोलो ;

तिमिर गर्भ ने ज्योति प्रकाश्यो, शिशु ने उरमां ल्यो, ल्यो,
दयामय ! मंगल मंदिर खोलो ।
नाम मधुर तम रट्यो निरन्तर, शिशु सह प्रेमे बोलो ;
दिव्य तृषाभर आव्यो बालक, प्रेम-अमीरस ढोलो ।
दयामय ! मंगल मन्दिर खोलो ।

नरसिंहराव करुण रस के कवि थे और कहा करते थे—'आ वाद्य ने करुण गा र विशेष भावे ।' एडविन आर्नोल्ड की 'लाइट ऑफ एशिया' के आधार पर इन्होंने 'बुद्ध चरित' नामक एक खण्ड काव्य की रचना की ।

लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी के प्रयत्न से जनता के हृदय में राष्ट्र-प्रेम का उदय हो चुका था । किन्तु नरसिंहराव की कविता में इस देश प्रेम को कोई स्थान नही मिला है । हाँ, विश्व प्रेम की चर्चायें बड़े गर्व से करते थे । स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए चलने वाले आन्दोलनों मे देश का साहित्य भी प्रभावित हो रहा था । कितने कवि और लेखक भी मैदान में उतर चुके थे । यथार्थवादी विचारप्रधान कविता का उदय हो रहा था । इस प्रकार इस कवि ने अपने जीवन काल में ही अपनी कल्पना प्रवण व्यक्तिवादी रचनाओं की संध्या भी देखी । शायद इसी की ओर लक्ष्य करके कवि ने लिखा है—

कुसुमो तो थयां म्लान, वीणाना तार तूटिया,
नूपुरे किंकणी सर्ववागे छे खोखरी हवा ।
रह्यां मात्र हवे गूढ करुणारस ने वडे,
भले आ उरनी भूमि भीजती सर्वदा रहे ।

आरम्भ में नरसिंहराव के प्रशंसकों ने मुग्ध होकर इनकी कविता को 'मरुथल का मधुर जल स्रोत' कहा था । किन्तु एक दूसरे समीक्षक ने 'रस रूप गंध वर्जित पाश्चात्य कुसुम' कहा है ।

केशवलाल हर्षदराय ध्रुव 'वनमाली' (१८५९-१९३७)—ये प्रधान रूप से प्राचीन साहित्य के संशोधक तथा अनुवादक थे । इन्होने मुद्राराक्षस, विक्रमोर्वशीय, गीत गोविंद, अमरुशतक एवं श्री हर्ष तथा भास के नाटकों का अनुवाद किया । इसके अतिरिक्त इन्होंने कुछ आलोचनात्मक निबन्धों तथा कविताओं की भी रचना की । भालण की कादम्बरी आदि मध्यकालीन ग्रंथों का सम्पादन किया । ये गुजराती भाषा के पंडित थे ।

सर रमणभाई नीलकंठ 'मकरंद' (१८६८-१९२८)—इनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था । ये प्रसिद्ध समाज सुधारक थे । प्रार्थना समाज की ओर से निकलने वाले मासिक पत्र 'ज्ञान सुधा' के सम्पादक थे । ये बहुत कुछ पश्चिमी विचारधारा के

पोषक थे। इनकी कृतियाँ हैं—'भद्रंभद्र' (उपन्यास); 'राईनो पर्वत' (नाटक); 'हास्यमन्दिर' (निबन्ध); 'कविता ने साहित्य'—चार भाग (समीक्षा)।

'भद्रंभद्र' हास्य रस प्रधान उपन्यास है। इसमें हास्य का स्थूल तथा सूक्ष्म—दोनों रूप हैं। इसमें सुधार विरोधी पण्डितों की कसकर खबर ली गई है। ऐसे पण्डितों की कायरता पर, दम्भ पर, दकियानूसी ख्यालातों पर तथा मूर्खता पर कटाक्ष किया गया है। दौलतशंकर नाम के एक ब्राह्मण थे। स्वप्न में भगवान शंकर इनसे कहते हैं—'दौलत' शब्द फारसी का है। अतः इसे बदल दो। विधवा विवाह का प्रचार करने वाले सुधारकों के विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़ दो। फिर क्या था? 'दौलत-शंकर' बन गये 'भद्रंभद्र' और शुरू किया सुधारकों के विरुद्ध धर्मयुद्ध। इस उपन्यास का पूर्वार्द्ध अधिक सरस है किन्तु उत्तरार्द्ध निर्बल है। रमणभाई ने पण्डित युग की संस्कृत प्रचुर गुजराती भाषा पर भी कटाक्ष किया है। इन्होने कई अँग्रेजी के शब्दों की जगह पर संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करके भारतीयकरण की पण्डितों की नीति का मजाक उड़ाया है, जैसे रेलवे स्टेशन के लिये 'अग्निरथविरामस्थान'।

'राईनो पर्वत' नाटक है। इसमें रमणभाई का सुधारक तथा विनोदी व्यक्तित्व कलात्मक ढंग से व्यक्त हुआ है। नायक 'राई' साध्य तथा साधन दोनों की पवित्रता पर जोर देता है और नायिका 'जालका' केवल साध्य की शुद्धता को ही महत्व देती है। किन्तु अंत में विजय नायक के ही विचारों की होती है। 'हास्य मन्दिर' हास्य-रस प्रधान निबन्धों का संग्रह है। कुछ निबन्ध बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। लेकिन समीक्षा के क्षेत्र में रमणभाई अधिक सफल हुए हैं। 'कविता अने साहित्य' (चार भागों में) में इन्होंने साहित्य तथा कला सम्बन्धी अपने सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। हाँ, इनकी आलोचना का तत्कालीन लेखकों पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा यह और बात है। किन्तु इनका आलोचना साहित्य नवलराम तथा नरसिंहराव से अधिक श्रेष्ठ है। संक्षेप में, रमणभाई हास्यरस के सफल लेखक तथा विद्वान समीक्षक थे।

मणिशंकर रत्नजी भट्ट 'कान्त' (१८६७–१९२३)—इनका जन्म लाठी के समीप चावंड नामक ग्राम में हुआ था। ये जाति के प्रश्नोरा नागर ब्राह्मण थे। इन्हें स्कूल की शिक्षा सौराष्ट्र में मिली तथा बी० ए० तक महाविद्यालय की शिक्षा बम्बई में। फिर इन्होंने शिक्षा विभाग में नौकरी की। ये दर्शनशास्त्र में विशेष रुचि रखते थे। स्वीडनबर्ग के दार्शनिक विचारों से प्रभावित होकर मणिशंकर कुछ समय के लिये ईसाई भी बन गये थे। परिवार और समाज के विरोध को सहन किया। काश्मीर की यात्रा के समय ट्रेन में इस भावुक कवि का अवसान हुआ। गुजराती साहित्य में कवि, विचारक तथा शिक्षक के रूप में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। 'पूर्वालाप' (१९२३) इनकी अधिकांश कविताओं का संग्रह है। 'रोमन स्वराज्य' तथा 'गुरुगोविन्दसिंह' दो नाटक हैं। इसके अतिरिक्त 'शिक्षण नो इतिहास';

'इजिप्ट नो इतिहास' लिखा तथा स्वीडनबर्ग, टैगोर, अरिस्टॉटल, प्लेटो आदि की कृतियों का अनुवाद किया।

कवि 'कान्त' एक संवेदनशील व्यक्ति थे। ईश्वर के न्याय में आशंका के कारण इन्होंने मानव जीवन में व्यथा का अनुभव किया। ये इस जीवन और जगत की नाना जटिलताओं के चिंतन में डूबे रहते थे। यह आत्म मंथन इनकी कृतिओं में कलात्मक ढंग से व्यक्त हुआ है।

'कान्त' की कविता में जीवन नवीन शैली में तथा नवीन कला के साथ व्यक्त हुआ है। पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण तथा अपनी प्राचीन संस्कृति के अध्ययन के कारण हमारे भाव जगत में जिन नए भावों का उदय हुआ उनकी अभिव्यक्ति के लिए कविवर 'कान्त' ने शिष्ट तथा समर्थ शैली प्रदान की। इनके काव्य में सत्य की खोज है, न्याय का आग्रह है तथा सौन्दर्य की उपासना है। इनकी कविता में देह और आत्मा का सामंजस्य है। इनकी कविता का कलेवर अलंकृत तथा सौष्ठव युक्त है। छंदों में इन्होने मराठी के 'अंजनी' वृत्त का तथा एक वृत्त के चरणों में फेरफार करके विविध रूप में प्रयोग किया है। इन्होने संस्कृत के शब्दों का प्रयोग पांडित्य प्रदर्शन के लिये नहीं बल्कि भावाभिव्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार किया है। इसलिये संस्कृत के शब्दों के साथ-साथ इन्होंने फारसी तथा देश्य शब्दों का बड़ी सुन्दरता से प्रयोग किया है। काव्य के प्रकारों में 'कान्त' ने खण्ड काव्य को महानता प्रदान की। इन्होंने लिरिक (आत्मलक्षी उर्मि काव्य) तथा कुछ सॉनेट के ढंग उत्तम कविताएँ लिखी हैं।

'कान्त' ने अपनी कविता कामिनी को सजाने के लिए अनुप्रास तथा अर्थालंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है और उसे अमर बना देने के लिए रसात्मकता की शक्ति प्रदान की है। इनके खण्ड काव्यों में प्राचीन तथा अर्वाचीन का सुगम समन्वय हुआ है। 'कान्त' काव्यकला मर्मज्ञ थे। कला के उपकरणों की परख इनकी गहरी थी। कवि नानालाल के नवीन काव्य का सत्कार इनकी कला मर्मज्ञता का परिचायक है।

कविवर 'कान्त' ने अपने खण्ड काव्यों में मन की रणभूमि पर दो वृत्तियों के संघर्ष का चित्रण किया है। 'वसन्त विजय' में राजा पाण्डु की कामवृत्ति तथा योगवृत्ति में संघर्ष दिखाया गया है। वसन्त की मादकता से 'काम' जग जाता है, पाण्डु उसे दबाते हैं किन्तु अन्त में वसन्त विजय प्राप्त करता है। 'अतिज्ञान' में त्रिकाल-ज्ञानी सहदेव ने अनुभव कर लिया था कि वे द्रोपदी की रक्षा नही कर सकेंगे इसलिए द्रोपदी के साथ आनन्दोपभोग का अधिकार उन्हें नहीं है। इस परिस्थिति में पड़े सहदेव के अंतसंघर्ष को कवि ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। 'चक्रवाक मिथुन' खण्ड काव्य में बेचारे दो प्रेमियों को रात भर अलग रहना पड़ता है। यह ईश्वर का अन्याय है, प्रकृति की क्रूरता है, जड़ता है। वियोगी चक्रवाक सुनता है

कि उत्तरी ध्रुव में छः महीने का दिन होता है किन्तु हाय ! छः महीने की रात भी तो होती है। अन्त में निराश प्रेमी आत्महत्या कर लेता है।

पाषाणोंमा नहिं-नहिं हवे आपणे, नाथ ! रहेवुं
शाने आवुं, नहि नाहिंज, रे ! आपणे, नाथ ! रहेवुं !
चालो एवा स्थल महिं, वसे सूर्य जेमां सदैव,
अनाथी कें अधिक हृदये आर्द्र ज्यां होय देव !
+ + +
अवदतां अटकी गई ए अहीं,
अधिक धीरज धारी शकी नहीं;
थइ निराश हवे ललना रुवे,
मृदुल पिच्छ थकी प्रिय तेल्हुवे !
+ + +
आ ऐश्वर्ये प्रणयमुखनी, हाय ! आशा ज केवी ?
अवर कांइ उपाय हवे नथी !
विरह, जीवन, मंहरीय मर्था :
गहनमां पडीए दिन देखतां :
नयन मीची करी दइ एकता।

सूरसिंहजी तख्तसिंहजी गोहेल 'कलापी' (१८७४ से १९०० ई०)--गुजराती साहित्य में 'कलापी' नाम से लोकप्रिय यह कवि सौराष्ट्र में लाठी नामक राज्य का राजा था। इस प्रतिभाशाली कवि की कविताओं का संग्रह 'कलापीनो केकारो' है। 'काश्मीरनो प्रवास' में काश्मीर की यात्रा का वर्णन है। 'माला अने मुद्रिका' तथा 'नारी हृदय' इनके दो उपन्यास हैं और 'कलापीना पत्रो' इनके चिन्तन प्रधान पत्रों का संग्रह है।

'कलापी' का जीवन प्रेम-संघर्ष से पूर्ण था। १६ वर्ष की आयु में राजकुमारी 'रमा' से इनका विवाह हुआ था। राजकुमारी के साथ उसकी दासी शोभना भी आयी थी। इस शोभना की शोभा ने इस भावुक कवि को विशेष रूप से आकर्षित किया। रमा तो घर की रमा थी किन्तु शोभना बन गयी दासी से प्रेमिका। विवाहिता पत्नी रमा के प्रति कर्तव्य तथा शोभना के प्रति आसक्ति के द्वन्द्व से व्यथित कवि लिखता है :

प्रणय घसडे तोडी देवा अहो सहु पिंजरा !
फरज घसडे केदी थावा अने मरवा दुःखे !

अर्थात् प्रणय समाज के बंधन को तोड़ने का आदेश देता है और कर्तव्य समाज के बंधन में बंदी होकर मरने की ओर प्रेरित करता है।

इस अन्तर्द्वन्द्व के पश्चात् कवि प्रणय के बारे में सोचता है कि :—

विभागों कीधाथी प्रणय न कदी न्यून बनतो
अने तेथी, भाई ! प्रणय प्रभु छे आजगत नो ।

अर्थात् दो व्यक्तियों के प्रति प्रेम के विभाजन से प्रेम में न्यूनता नहीं आती है । और यह प्रेम ही जगदीश्वर है ।

और अंत में कवि निर्णय करता है कि :—

'चाहीश तो चाहीश बेयने ।'

अर्थात् यदि प्रेम करूँगा तो दोनों के साथ करूँगा । फिर शोभना के साथ कवि प्रेम विवाह करता है । कवि का यह प्रणय उसके काव्य का स्रोत है । 'कलापी' प्रेमी है या कवि ? समीक्षकों ने इस बात को लेकर गरम विवाद किया है । लेकिन कलापी कवि है वह भी उच्च कोटि का कवि । सच बात तो यह है कि इस कवि का सम्पूर्ण जीवन ही काव्य है ।

कलापी यौवन और प्रेम का कवि है । उन्होंने स्वाभाविक सरलता से और निरर्थक पांडित्य से मुक्त होकर विपुल काव्य-रचना की है । इनका काव्य सहज सिद्ध श्रयाममुक्त सर्जन है । इन पंक्तियों में कवि व्यथित हृदय रो उठा है—

रे रे ! रमा ! हृदय ओ ! कर माफ ! व्हाली !
हूँ जाउं छुं ! तलसुं छुं ! कर माफ ! व्हाली !
छाती परे कर हवे तुज राख ! व्हाली !
ने शोभना कर वती मुज नेत्र चांप !

मरने से कुछ दिन पूर्व कवि अपनी करुण कविता 'तमारा राह' में सूफी कवियों की तरह ईश्वर को सम्बोधित करके लिखता है :—

गुलामों कायदा ना छो ! भला ए कायदो कोनो ?
गुलामो ने कहुं हुं शुं ? हमारा राह न्यारा छे !
नहीं जाहो जलालीना, नहीं कीर्ति, न उल्फतना—
हमें लोभी छीए, ना ! ना ! हमारा राह न्यारा छे !

प्रकृति वर्णन वाली कविताओं में भी कवि के हृदय का अनुराग व्यक्त हुआ है । कलापी का गद्य भी काव्य की सरसता से पूर्ण है ।

छब्बीस वर्ष की छोटी अवस्था में यह अमर कवि अपनी दोनों पत्नियों को तथा गुजराती साहित्य को बिलखता छोड़ कर इस संसार से चला गया ।

नानालाल दलपतराम कवि 'प्रेमभक्ति' (१८७७-१९४४)—मध्ययुग तथा आधुनिक युग के संधि स्थल पर खड़े होकर नये युग का शंखनाद करने वाले दलपतराम के ये सुपुत्र थे । नानालाल अर्वाचीन साहित्य के महाकवि माने जाते हैं । ये शिक्षा विभाग में उच्च पदाधिकारी थे । १९२० ई० में असहयोग आन्दोलन आरंभ हुआ । नानालाल भी सरकारी नौकरी छोड़कर इस आंदोलन में शामिल हो

गए। किन्तु कविवर नानालाल जी स्वतंत्र तथा उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। गांधीवादियों के साथ इनकी भी नही पटी। किन्तु कोई बात नहीं, गुजरात का यह अमर कवि अकेले ही दहाड़ता रहा। किसी सरदार की अपेक्षा नहीं की।

सुधारक युग के कवियों ने सामाजिक बुराइयो को दूर करने का प्रयास किया। कवियों और लेखकों की दृष्टि बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय, अनमेल विवाह तथा विधवा विवाह आदि सामाजिक प्रश्नों से आगे नहीं गई। लेकिन पंडित युग के लेखकों तथा कवियों ने पारिवारिक जीवन के कष्ट के मूल कारण का पता लगाया और उसे दूर करने का प्रयत्न किया। वह कारण है—पति-पत्नी में प्रेम का अभाव। इसी अभाव को दूर करने लिए गोवर्धनराम ने गद्य के द्वारा प्रेमविवाह की महिमा का वर्णन किया और नानालाल ने पद्य में पति-पत्नी के पवित्र प्रेम का गान किया।

नानालाल का साहित्य विपुल है। केवल कुछ प्रमुख कृतियों का ही नाम यहाँ दिया जाता है—(क) **काव्य**—केटलांक काव्यो—तीन भागों में (१९०३,१९०८, १९३५); राजसूत्रोनी काव्य त्रिपुटि (१९०३); वसन्तोत्सव (१९०५); चित्रदर्शनो (१९२१); गीतमंजरो (१९२८); ओज अने अगर (१९३३); नाना-नाना रास—दो भागों में (१९१०, १९२८); कुरुक्षेत्र (महाकाव्य); (ख) **नाटक**–इन्दुकुमार–तीन भागों में; जयाजयंत (१९१४); राजर्षि भरत (१९२२); विश्वगीत (१९२७); जहाँगीर-नूरजहाँ (१९२८); शाहंशाह अकबर (१९३०); संघमित्रा (१९३१); (ग) **उपन्यास**—उषा (१९१८); (घ) **निबंध तथा व्याख्या संग्रह**—साहित्य मंथन (१९२४); उद्‌बोधन (१९२७); संसार मंथन (१९२७); अर्द्धशताब्दिना बे बोलो (१९२७)।

कवि नानालाल ने संस्कृत महाकाव्य के अनुरूप अंग्रेजी ब्लैंक वर्स की तरह एक नए छंद की योजना करने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त एक नई शैली 'अपद्यागद्य' अथवा डोलन शैली का आविष्कार किया। यह शैली पद्य की तरह छंदोबद्ध नहीं होती है। किन्तु इसमें पद्य की मनोहरता, संक्षिप्तता तथा लय है और यह शैली गद्य की तरह प्रवाही तथा अनियंत्रित है। यह एक प्रकार से उर्मिमय गद्य का एक रूप है। नानालाल के अलावा किसी भी अन्य कवि ने इस शैली का प्रयोग नहीं किया। नानालाल की करीब-करीब सभी कृतियाँ इसी शैली में लिखी गयी हैं। इसके अलावा वृत्त बंध छंद-रचना पर भी इनका अच्छा अधिकार था। शब्दों के नाद, अर्थ तथा भाव की परख इनकी गहरी थी। इनकी लेखनी के द्वारा गुजराती भाषा के सौन्दर्य में तथा भाव प्रकाशन की शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हुई।

नानालाल प्रतिभाशाली तथा कल्पनाप्रवण कवि थे। संस्कृत काव्य, फारसी काव्य, मध्यकालीन गुजराती साहित्य तथा लोक साहित्य का इनका ज्ञान अच्छा था। नानालाल के काव्य में ऊर्मि, विचार तथा भावना में से ऊर्मि का निरूपण अधिक

हैं। मानव हृदय की कोमल, मधुर, गंभीर तथा रुद्र ऊर्मियों का आलेखन है। किन्तु इनमें से युवा हृदय के प्रेम का चित्रण अधिक है।

वस्तुतः ऊर्मिकाव्य (आत्मपरक गीत) नानालाल की सर्वोत्तम देन है। मनसुखलाल झवेरी के शब्दों में—इनके गीतों में शैली, शब्द, अर्थ, संगीत तथा काव्य तत्त्व का मनभर, मनोहर समन्वय हुआ है। इनमें कल्पना की चारुता, भाव की मधुरता तथा व्यंजना की आकर्षकता है। 'चित्रदर्शनो' इनका खण्ड काव्य है और महाकाव्य के प्रयोग के लिए इन्होंने 'कुरुक्षेत्र' की रचना की। किन्तु खण्डकाव्य तथा महाकाव्य की रचना में इन्हें उतनी सफलता नहीं मिली जितनी आत्मपरक गीत लिखने में मिली है। कविवर नानालाल में हिन्दी के महाकवि निराला जैसी बहु-वस्तु स्पर्शिनी प्रतिभा थी तथा प्रसाद जैसी जागरूक भावुकता थी। निराला जी की तरह नानालाल ने भी काव्य में नाद सौन्दर्य की ओर अधिक ध्यान दिया है। संगीत और काव्य को समीप लाने का प्रयत्न किया है।

इस महाकवि ने गुजरात के सामने प्रणय और परिणय का आदर्श प्रस्तुत किया है। इनका कहना था—प्रणय की सिद्धि परिणय में और परिणय की सफलता प्रणय में है। (परण हुँ एटले प्रभुता मा पगला माडवा)। ये जीवन में आनन्द और उल्लास के पुरस्कर्ता थे किन्तु इसके साथ इनका यह भी कहना था कि—रस सागरनी पाड़ तौ प्रभुए पुण्य थी बांधेली छे—अर्थात् रस का सागर तो हो सकता है किन्तु उसकी मर्यादा पुण्य ही होनी चाहिए। इसी प्रकार दूसरी जगह कवि ने कहा है कि —वसन्तोत्सव आम्रमंजरी नो उत्सव छे महुड़ा नो नहि—अर्थात् वसन्तोत्सव आम्रमंजरी का उत्सव है, महुआ (मदिरा) का नहीं। विवाह में शरीर का मिलन नहीं बल्कि आत्मा का मिलन होता है तभी वह विवाह है और दाम्पत्य जीवन है। कवि ने अपने एक पात्र के मुख से कहलवाया है कि—आत्मा ओड़खे ते वर। ने न ओड़खे ते पर। (ओड़खे—पहचानना) विधवा विवाह के सम्बन्ध में आपने अपने इसी सिद्धान्त से प्रेरणा लेकर लिखा है 'देह लग्न नी विधवा ने पुनर्लग्न समू जेवुं पुण्य न थी ने स्नेह लग्न नी विधवा ने पुनर्लग्न समु पाप न थी'—अर्थात् देह लग्न (विवाह) की विधवा के लिए पुनर्विवाह जैसा कोई पुण्य नहीं है किन्तु प्रेम विवाह की विधवा के लिए पुनर्विवाह जैसा कोई पाप नहीं है।

कविवर नानालाल ने करीब दो सौ गरबियों की रचना की है। इनमें शब्द, अर्थ तथा संगीत का सुभग समन्वय हुआ है।

(१) पूछशो मा, काइ पूछशो मां,
मारा हैयानी वातडी पूछशो मा।
दिलना दरियाव मंही कांइ कांइ मोती;

गोती गोती ने तेने चूंथशो मा ।
मारा हैयानी वातडी पूछशो मा ।
टहुके छे कोकिला, पुकारे छे पपैया,
कारणेना कामीने सूझशो मा ।
मारा हैयानी वातडी पूछशो मा ।
आंसुनां नीरना को आशाना अक्षरो
आछा आछा तोय लछशो मा ।
मारा हैयानी वातड़ी पूछशो मा ।
जगना जोद्धा ! एक आटलूं सुणो जजो ;
प्रारब्धनां पूर सामे झूझशो मा ।
मारा हैयानी वातड़ी पूछशो मा ।

अर्थात् मत पूछो, मेरे हृदय की बात मत पूछो । दिल के दरियाव में मोतियाँ भरी हैं, उन्हें मत बिखेरो । कोयल गाती है, पपीहा पुकारता, कारण का खोजी उन्हें मत छेड़े । (हृदय में) आशा के पत्र हैं जो आँसुओं से लिखे गये हैं ; वे धुंधले हैं, कृपया उन्हें कोई मत मिटाए । हे जग के योद्धा ! मेरी एक बात सुनो—प्रारब्ध की बाढ़ से मत जूझो । मेरे हृदय की बात मत पूछो ।

(२) ओ आत्मदेव !
आवो, हो ! आवो वसंत आ ।
देवरंगी फूल उग्यां अबनीमां, आभमा ;
फूलडां उथाड़ो मुज भालमां ।
ओ आत्मदेव !
म्हेके म्हेके म्हेके नववासना विराटनी ;
म्हेके सुगंधो अंगरंगमां ।
ओ आत्मदेव !
वननां उंडाण भरी बोले छे कोकिला ;
बोली को उर आम मां ।
ओ आत्मदेव !
चन्दनचोक ढले तेज केरी बादली ;
तेज ए ढोलाय प्राण चोकमां ।
रमती वसंत आज विश्व केरी वाडीए ;
रमों मारी आंखना उद्यानमां ।
ओ आत्म देव ! आवो, हो आवी वसंत आ ।

अर्थात्—ओ मेरे आत्मदेव आओ ! वसंत का आगमन हो चुका है । अवनी

और अम्बर में देवरंगी फूल खिले हैं। आओ, मेरे भाग्य पुष्प को खोल दो। विराट की नववासना चारों ओर महक रही है। मेरे अन्तर में दिव्य सुगन्धि उठ रही है। ओ आत्मदेव ! आओ ! वन के अन्तर में कोयल बोल रही है और वही मेरे अन्तर में कूक रही है। ओ आत्मदेव आओ।

विश्व के उद्यान में वसन्त रम रहा है। आओ, मेरे हृदय के उद्यान में रमने के लिए आओ ! मेरे आत्मदेव आओ !

नानालाल ने कई नाटकों की भी रचना की है। लेखक ने प्रसिद्ध, उत्पाद्य तथा मिश्र कथावस्तु को लेकर इन नाटकों की रचना की है। इनके नाटक भावना प्रधान हैं। कथा वस्तु का उनमें अभाव है। नाटक परलक्षी कला का प्रकार है। कविवर नानालाल नाटककार के रूप में सफल नहीं हुए। इनके पात्र व्यक्ति नहीं बल्कि मूर्त भावना हैं। संवादों में पात्रगत विशेषता नहीं प्रकट होती है। नाटककार अपने वक्तव्य को प्रतीकों के द्वारा प्रकट करने का प्रयत्न करता है किन्तु वहाँ भी औचित्य का अभाव है। किन्तु इनके नाटकों में गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन गीतों में मानव हृदय के प्रेम, हर्ष, निराशा, विरह आदि का चित्रण है। 'इन्दुकुमार' में कवि अपने प्रिय वसन्त धर्म का वर्णन करता है। 'विश्वगीता' में पाप के विषय में चर्चा है। 'जयाजयन्त' में विवाह का ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया गया है। जया और जयन्त विवाह के बाद भी शारीरिक सम्बन्ध न रखने की प्रतिज्ञा करते हैं। अपनी इन्हीं आदर्श प्रधान कृतियों के कारण यह कवि गुजरात में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।

आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव (१८६९-१९४२)—ये संस्कृत के प्रसिद्ध अध्यापक तथा 'वसंत' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक थे। बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी के प्रो-वाइस-चांसलर भी थे।

आनन्दशंकरजी गोवर्धनराम की तरह इस युग के सर्वश्रेष्ठ विद्वान थे। इन्होंने जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों को बुद्धि की कसौटी पर कसकर जाँचा है। वेदान्त के अद्वैत दर्शन से इन्होंने प्रेरणा ग्रहण की। इनके आदर्श तथा व्यवहार में सुभग समन्वय था। विद्वानों तथा दार्शनिकों के परस्पर विरोधी मन्तव्यों तथा सिद्धान्तों में से गुणांश को स्वीकार करके तथा दोषांश को त्याग करके आनन्दशंकर ने अपना जीवन दर्शन बनाया था। इनकी दूसरी विशेषता थी—'अन्तनो परिहार अने मध्यनुं ग्रहण'। ये नाना वादों में से बीच का रास्ता निकालते थे।

'आपणों धर्म', 'काव्य तत्त्व विचार', 'साहित्य विचार' तथा 'विचार माधुरी' नाम से इनके लेखों का संग्रह प्रकाशित हुआ है। 'हिन्दू धर्मनी बालपोथी' तथा 'नीति शिक्षिका' इनकी अन्य पुस्तकें हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने श्री भाष्य का अनुवाद भी किया था।

अरदेशर फरामजी खबरदार 'अदल' (१८८१-१९५३)—कई पारसी लेखकों ने गुजराती भाषा में साहित्य का सर्जन किया है। किन्तु इनमें से अधिकांश की भाषा 'पारसी गुजराती' है। लेकिन खबरदार ने शुद्ध गुजराती भाषा में काव्य की रचना की है। कविवर नर्मद से प्रभावित होकर आपने काव्य रचना प्रारम्भ की। किन्तु कुछ समय के पश्चात् ही आपने इस क्षेत्र में अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का परिचय दिया था। सन् १९०१ ई० में आपकी 'काव्य रसिका' (काव्य संग्रह) प्रकाशित हुई। इनकी अन्य प्रकाशित रचनाएँ हैं—विलासिका, प्रकाशिका, भारतनो टंकार, सन्देशिका, कलिका, रासचन्द्रिका, भजनिका, दर्शनिका, कल्याणिका तथा राष्ट्रिका। इसके अतिरिक्त इन्होंने कवि मोटालाल के नाम से 'प्रभातनो तपस्वी', 'कुक्कुट दीक्षा' तथा 'लखेगीता' नामक प्रतिकाव्य (Parody) भी लिखा है। 'गुजराती कवितानी रचना कला' नाम से इनका व्याख्यान भी प्रकाशित हुआ है। इनकी भाषा शुद्ध है तथा छन्द रचना व्यवस्थित है। इनकी गरबियाँ तथा गीत सुन्दर हैं। मुक्तधारा (Blank verse) में रचित इनकी 'कलिका' अधिक प्रसिद्ध है। यह लम्बी कविता प्रेमियों की प्रशंसा से युक्त है।

चाली जती रजनीना केशसांथी खरी पड़ी
क्षितिजना आगणमां चन्द्र पड्यो होय,
प्रिय केरी वेणीमांथी खरीने पडेलुं एवुं
मोगरानुं फूल देखी मन मारू मोह्य।

अर्थात्, जाती हुई रजनी के केश में से छूट कर क्षितिज के आँगन में गिरा हुआ चन्द्र जैसा, मेरी प्रिया की वेणी में से छूट कर गिरे हुए, मोगरे के फूल ने मेरे मन को मोह लिया है।

विदाई की निम्नलिखित पक्तियाँ अत्यधिक सुन्दर हैं—

जाओ, मारां गीत ; बधुं मधुरुं मधुरुं लाग्युं,
हतुं गई काले ते, शो तेनो अफसोस ?
मधुरं जे लाग्युं ते तो प्रभुए दीधेल हतुं,
अधरूं जे दीसे तेमां हशे दृष्टिदोष ;
लाखो लाख दुःखोए जे मंथन है यानां मांड्यां,
तेनी कटुताए आप्या अमृतना ओघ,
कटुता सौ रहो मारी : मधुरता हो तमारी ;
जाओ, मारां गीत, आपो आनन्द अमोघ।

झूलना छन्द में लिखी 'दर्शनिका' इनकी दूसरी प्रसिद्ध कृति है। इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित नौ चिन्तन प्रधान कविताएँ हैं। इसमें काव्य और दर्शन का सरस समन्वय हुआ है। जीवन की क्षणभंगुरता पर कवि व्यथित होकर कहता है—

सिंधुनी ऊर्मि शो छे सबल मानवी
तोय उडवे कशां व्यर्थ फोरां ?

अर्थात् मानव सबल है किन्तु सिन्धु की ऊर्मि जैसा हो। फिर बड़े गर्व से यह व्यर्थ की झाग क्यों फैला रहा है ?

मानवी तुं अनन्तत्वनुं बाल छे,
परम आनन्द पर हक्क तारो ;
क्रोड तारा झबुकता हसे विश्वमां,
ते मही एक तुं पण सितारो।

अर्थात् मानव ! तू अनन्त का बाल है, परमानन्द पर तुम्हारा हक है। विश्व में अनन्त तारे चमकते हैं, उनमें से तू भी एक सितारा है।

दामोदर खुशालदास बोटादकर (१८७०-१९२४)—इन्हें जीवन में नाना प्रकार की आर्थिक तथा सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। इनके जीवन की निराशा तथा कटुता का असर इनके साहित्य पर भी पड़ा। इनके पाँच काव्य संग्रह प्रकाशित हैं—कल्लोलिनी, स्रोतस्विनी, निर्झरिणी, रासतरंगिणी, शैवलिनी।

बोटादकर एक बहुत ही लोकप्रिय तथा शिष्ट कवि थे। अँग्रेजी भाषा-ज्ञान के अभाव के कारण अँग्रेजी कविता का सीधा परिचय इन्हें नहीं मिला था। किन्तु मित्रों की सहायता से वर्ड्स्वर्थ आदि की कविता का कुछ ज्ञान प्राप्त किया था। बोटादकर ने संस्कृत के कवि कालीदास, गुजराती के कवि कलापी, कान्त, नानालाल आदि की काव्य-कला से प्रेरणा प्राप्त की थी। इनकी भाषा कहीं-कहीं अत्यधिक संस्कृतमय हो गयी है। फिर भी छन्दों में सौष्ठव है, पदों में लालित्य तथा माधुर्य है, अर्थ में विशदता एवं प्रसाद है। इनमें भावुकता तथा आदर्शपरता है। किन्तु इनके शब्दों में जितना बाह्य आंगिक लालित्य, माधुर्य तथा गांभीर्य है उतनी कल्पना तथा विचारों में गम्भीरता नहीं है और इनमें कलागत संयम तथा अनुरणन भरी ऊँची व्यंजना शक्ति का अभाव है। फिर भी दलपतराम की तरह इनमें भी शिष्टता, मिष्टता तथा सरलता है। 'रासतरंगिणी' इनकी उच्चकोटि की कृति है। अपनी कविता में कवि ने गृह तथा कुटुम्ब के आदर्शों का निरूपण किया है। किंतु इन सब में कवि के जीवन की कटुता, निराशा तथा इनसे उत्पन्न पलायनवाद की झलक अवश्य मिलती है।

'मातृगुंजन' नामक कविता में पुत्री को विदा करते समय माता के ममतापूर्ण हृदय का कवि ने बड़ा ही करुण चित्र प्रस्तुत किया है।

धोरी ! धीरे धीरे तमे चालजो रे मारुं कूल न फरके,
ऊडी जशे पण अेकमां रे अेनुं काळजु धडके।

* * * * *

जाय अहो वही वेलडो रे व्हीली मात विमासे,
सू नुं थयुं जग सामटुं रे भूमि डोलती भासे।

जन्मशंकर महाशंकर बूच 'ललित' (१८७७-१९४६)—साधु चरित वाला यह कवि गुजरात में 'ललित' उपनाम से प्रसिद्ध है। इनकी चार काव्य कृतियाँ प्रसिद्ध हैं–'ललितना काव्यो' (१९१२), 'बडोदरा ने वडले' (१९१४), 'ललितना बीजा काव्यो' (१९३५)। ललित के काव्य का लालित्य शब्दों की लय अथवा धुन तथा भाव प्रदर्शन की शैली में है। इनकी कविता पर नानालाल तथा कलापी का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है। कवि ने गृह जीवन की मधुरता को तथा स्वजनों के स्नेह को अपने काव्य का विषय बनाया है। इस साधु कवि ने भोले ग्राम्य जीवन को सरल भाषा में चित्रित किया है। किन्तु इनकी लम्बी कविताओं में अर्थगुंफन की अशक्ति का परिचय मिलता है। फिर भी इनके गीतों में संगीतात्मकता तथा सुकुमारता है। 'हरिणी' छन्द में ललित ने कई रचनाएँ की हैं। कोई-कोई रचना तो बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है—

मुज जीवितनी मोंघी आशा भवे, सखि ! अेक तुं,
अजब नूर कैं आ आंखनुं प्रिये ! मुज अेक तुं;
बणुं बणुं थतां आ हैयाने सुधा सम लेप तुं,
अकल 'किमपि द्रव्यं' व्हाली ! गरीबनुं अेक तुं,
'सोऽहम सोऽहम' सती रटे 'साहम साहम' कन्थ,
सेवे अेकबीजां सदा अे सहचार अनन्त।

अर्थात् तुम मेरे जीवन की आशा हो, आँख की नूर हो, हृदय की सुधा हो अर्थात् सब कुछ हो। सहचार की अनन्तता पारस्परिक प्रेम पर निर्भर है।

ललित काव्यो भाग २ की कविताओं में अनुप्रास तथा यमक का चमत्कार अधिक है। कवि ने स्त्री महिमा का गान अधिक किया है। चिन्तन प्रधान विषयों का भी कवि ने स्पर्श तो किया है किन्तु सर्जक कल्पना के अभाव के कारण सफलता नहीं मिली। फिर भी 'अेकलराम' तथा 'विजोगण वासलडी' इनकी सुन्दर कविताएँ हैं। विजोगण वासलडी' में तो जैसे स्वयं कवि की व्यथा ही गा उठी है—

काला घेला कानूडानो
झूरे विजोगण वांसलडी।
सोरठने सागर संगम,
प्रभामने पीयणे हृदयंगम,
पूर्वजने सूर पंचम
झँखे व्हीलो वांसलडी !

* *

अधुरे मधुरे सूरे
स्फुरे कंइ दूर अदूरे
कंपे घायल वासलडी !
झरणा जे जन्मातरनी
करणी जे कालातरनी
अभिमरणी जे अन्तरनी
जंपे क्यांथी वासलडी !

बलवंतराय कल्याणराय ठाकोर 'सेहेनी' (१८६६-१६५२)—इनकी प्रमुख रचनाएँ है—'दर्शनियु'' (कहानी संग्रह) ; 'भणकार' (कविता संग्रह); 'उगती जुवानी' 'नाटक'। इसके अतिरिक्त नवीन कविता आदि पर कुछ निबन्ध तथा व्याख्यान ।

बलवंतराय कल्याणराय ठाकोर की कविता में छंद, भाषा, विषय तथा काव्य रीति आदि सब मे नया उन्मेष हुआ है। उन्हाने छंदो मे यति का तथा श्लोकत्व का त्याग करके अर्थ तथा भावावेग के अनुसार विरामों का प्रयोग किया है। इस प्रकार पद्य को निर्बन्ध रूप मे अर्थानुसारी लय मे प्रवाहित किया। कवि ने इस नयी शैली का प्रयोग अँग्रेजी के ब्लैंक वर्स को ध्यान मे रखकर 'पृथ्वी' वृत्त मे किया। ब्लैंक वर्स की लाक्षणिकता तथा गंभीरता को कवि ने पृथ्वी छंद मे अच्छी तरह से उतारा है। इसके अतिरिक्त कई प्रचलित छंदो में कुछ फेर-फार करके नए ढंग से उनका प्रयोग किया है।

काव्य रूपो मे ठाकोर की विशिष्ट देन अंग्रेजी सॉनेट की है। इनके पूर्व कुछ पारसी कवियो ने गुजराती मे सॉनेट की रचना की है किन्तु एक सौन्दर्यक्षम काव्यरूप के ढंग पर सॉनेट की रचना कविवर ठाकोर ने ही की है। इनका भाषा तथा रीति अत्यधिक लाक्षणिक है। शैली नवीनता तथा ताजगी के कारण आकर्षक है।

नानालाल तथा कलापी आदि के प्रभाव मे गुजराती कविता मे उर्मि, गेयता और शब्दचमत्कार का अतिरेक हो रहा था। इसकी प्रतिक्रिया ठाकोर की कविता मे हुई। इनके मतानुसार कविता के लिये गेयता अनिवार्य नही है। गाधी युग के कवियो को ठाकोर की अगेय प्रवाही पद्य-रचना युक्त विचार प्रधान कविताए अधिक पसद आयी और इन्ही के प्रभाव से गाधी युग विचार प्रधान कविता का युग बना। गाधी युग के कवियों ने ठाकोर को कवि-कुल गुरू माना।

उपसंहार—पंडित युग आज भी गुजराती साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस युग मे गुजराती का गठन तथा विकास हुआ। इसी युग मे प्रतिभा तथा पांडित्य का समन्वय हुआ, गोवर्धनराम जैसे उच्चकोटि के उपन्यासकार तथा नानालाल जैसे महाकवि हुए। इन दोनों की तुलना विश्व के श्रेष्ठ लेखकों तथा कवियो के साथ

की जा सकती है। इन दोनों ने गुजराती साहित्य के भंडार को भरा तथा गुजराती भाषा को भी व्यवस्थित, परिमार्जित और उन्नत किया। इतना होते हुए भी इस युग के कवियों की कल्पना की उड़ान तथा विचारों की गहराई तक साधारण जनता नहीं पहुँच सकी। संस्कृत प्रचुर भाषा भी जनता के लिये दुर्बोध थी। इसीलिए गांधीजी ने सरल, सुबोध तथा प्रेरक साहित्य के सर्जन पर जोर दिया था।

: ६ :

अर्वाचीन गुजराती साहित्य—३

गांधी युग [सन् १९२० से आज तक]

एक : सामान्य परिचय

सन् १९१४ ई० में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। इस अभूतपूर्व युद्ध का विश्वव्यापी प्रभाव भी पड़ा। गुजरातियों का व्यापार न केवल भारत में बल्कि बर्मा तथा अफ्रीका में भी फैला हुआ था। इस युद्ध के समय व्यापार में इन्हें अत्यधिक लाभ हुआ। सब जगह गुजराती समृद्धिशाली बने। धन ने इन्हें शक्ति तथा महत्त्व प्रदान किया।

अफ्रीका में सफल संघर्ष करने के पश्चात् १९१४ ई० मे महात्मा गांधी स्वदेश लौटे। इन्होंने अहमदाबाद को अपना प्रधान कार्यक्षेत्र बनाया और चरखा तथा सत्याग्रह का प्रचार किया। गांधीजी ने गुजरात के किसानों, व्यापारियों तथा राजनीतिज्ञों को संगठित किया। महात्मा गांधी जैसे महापुरुष को पाकर सम्पूर्ण गुजरातियों में स्वाभिमान पैदा हुआ। इस अद्वितीय नेता की वाणी जन-जन तक पहुँची। चरखा का प्रचार हुआ, मदिरापान तथा अछूत प्रथा का विरोध और गाँवों का संगठन हुआ। असहयोग आन्दोलन (१९२०), बारडोली सत्याग्रह (१९२८), दांडी यात्रा (१९३०) यरवदा जेल में आमरण अनशन (१९३२), भारत छोड़ो आन्दोलन (१९४२) आदि के कारण गांधीजी राष्ट्रपिता बने। सम्पूर्ण देश की संगठित जनता ने आत्मविश्वास का अनुभव किया। सत्य और अहिंसा देश की नीति के आधार बने। अपने इसी नए दर्शन के अनुसार बापूजी ने धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं का हल प्रस्तुत किया। गांधीजी के इस दृष्टिकोण ने साहित्य को भी प्रभावित किया।

गांधीवाद के अतिरिक्त समाजवाद तथा साम्यवाद का भी प्रभाव इस युग के साहित्य पर पड़ा। रूस की क्रांति ने बहुत सी प्राचीन मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। श्रद्धा, प्रेम आदि पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण की विजय हुई। समाजवाद तथा लोकतंत्र का प्रभाव बढ़ा। नारी, धर्म, नीति आदि के मूल्यों में परिवर्तन हुआ। इन सबके प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया।

पंडित युग का साहित्य जटिल शैली वाला तथा विद्वद् भोग्य था। गांधीजी के प्रभाव से भाषा की दुर्बोधता दूर हुई। सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग होने लगा। काका साहब कालेलकर ने इस सरल, सुबोध भाषा को साहित्यक्षम तथा सुन्दर बनाया। मुन्शीजी ने साहित्य में जीवन का उल्लास व्यक्त किया। सौराष्ट्र मंडल के लेखकों ने साहस तथा पौरुष से भरे साहित्य की सृष्टि की। कुछ लेखकों ने रूस की रक्तमयी क्रान्ति से प्रभावित होकर दलितों के प्रति सहानुभूति तथा पूँजीपतियों और जमीदारों के प्रति पुण्य प्रकोप व्यक्त किया। इस प्रकार एक नए ढंग के प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि हुई। लेखकों और कवियों ने किसान, मजदूर के ग्रामीण जीवन को अपने साहित्य का विषय बनाया। पंडित युग की अपेक्षा गांधी युग का साहित्य साधारण जन-मन के समीप आया। एक प्रकार से इस युग का साहित्य सम्पूर्ण जनता को अपने साथ लेकर चला। इस युग के साहित्य में व्यक्तिवादी कल्पना का अभाव है किन्तु विचारों की प्रधानता है। गांधी युग के कवि तथा लेखक जीवन की कठोर वास्तविकता की ओर अधिक अभिमुख हुए। विश्वबन्धुत्व तथा विश्वैक्य की भावना के गीत गाये गये।

सुन्दरम् की 'कोया भगतनी कडवी वाणी' (१९३१) तथा उमाशंकर जोशी की 'विश्वशान्ति' (१९३१) मे गांधी युग की कविता का आरम्भ होता है।

पण्डितयुग की परम्परा में होते हुए भी इस युग की कविता कई रूपों में भिन्न मार्ग पर चली है। पण्डित युग का कवि साहित्य मे प्रेरणा लेता था किन्तु गान्धी युग का कवि जीवन से प्रेरणा लेता रहा है। इस प्रकार गान्धी युग के कवि का क्षेत्र काफी विस्तृत था। विचार प्रधान अगेय प्रवाही पद्य रचना पद्धति को इस युग के कवि ने स्वीकार किया। पहले के कवियों की मान्यता थी कि भव्य विषय पर काव्य रचना करने मे कविता भी भव्य होती है किन्तु इस युग के कवियो ने छोटे-छोटे तुच्छ विषयों पर भी कविता की। उकरडो (घूर), चूसायलो गोटलो (आम की गुठली), भिखारण, भंगियण, अमास आदि को कवि प्रतिभा ने स्पर्श किया। इसके साथ-साथ ब्रह्म, निशीथ, विराट प्रणय, कुरुक्षेत्र, प्रेम, प्रकृति आदि पर भी कविता लिखने की परम्परा चलती रही। एक प्रकार से कविवर नानालाल का प्रभाव भी बना रहा। संक्षेप में इस युग की कविता प्रधान रूप मे गान्धीजी, ठाकोर तथा नानालाल से प्रेरणा ग्रहण करके नई साज सज्जा के साथ सामने आई।

लेकिन इधर दस वर्षों से कविता मे फिर परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है। कविता फिर से ऊर्मि प्रधान तथा गेय बन रही है।

दो : गान्धीजी तथा प्रमुख गांधीवादी लेखक

मोहनदास करमचन्द गान्धी (१८६९–१९४८)—इनके लिए साहित्य साधन

था और साध्य था इस देश की कोटि-कोटि जनता का कल्याण। आज तक किसी भी नेता, धर्मप्रचारक तथा साहित्यकार ने इस महान देश की विचारधारा को इतना अधिक प्रभावित नहीं किया जितना अकेले महात्मा गान्धी ने किया है। इनके सत्य, अहिंसा, विश्वप्रेम, सर्वोदय आदि मङ्गलमय आदर्शों को जनता ने अपना आदर्श बनाया।

गान्धीजी ने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी—तीनों भाषाओं में अपने विचारों को प्रकट किया है। इनकी कृतियाँ ये है—(आत्मकथा)—सत्य का प्रयोग अथवा आत्मकथा; (गान्धीवाद)—अहिंसा, अमहकार, गान्धीजी की जबानी, धर्मयुद्ध का रहस्य, एक सत्यवीर की आत्मकथा अथवा सॉक्रटीज का बचाव, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास; (धर्म तथा नीति)—अनासक्तियोग, आश्रमवासी प्रत्ये, आश्रम जीवन, आश्रम की बहनों के लिए, गीता-पदार्थकोष, गीता बोध, दयाधर्म, धर्ममंथन, नीतिधर्म, मङ्गल प्रभात, व्यापक धर्मभावना, व्रत विचार, रामनाम; (सामाजिक)—त्यागमूर्ति तथा अन्य लेख, समाज में स्त्रियों का स्थान, रचनात्मक कार्यक्रम, पूर्ण मद्य निषेध, आरोग्य की चाबी, अस्पृश्यता निवारण, धर्मसंस्थापन, हरिजन भागवत, हिन्दू आचार, हिन्दू धर्म की कसौटी, वर्णव्यवस्था; (राजनीतिक)—हिन्द स्वराज्य, आखरी फैसला, गान्धी वायसरॉय पत्र व्यवहार, देशी राज्यों का प्रश्न, चले जाओ; (अर्थशास्त्र)–गोसेवा, सम्पत्ति शास्त्र, सर्वोदय, सौ टका स्वदेशी; (दोहन)–गान्धी विचार दोहन, अंगन विचार, गान्धी गिरामृत, गान्धीजी का वचनामृत, गान्धीजी की दिव्यवाणी, महात्मा गान्धी का मनोमन्दिर; (प्रकीर्ण)—इजिप्ट का उद्धारक, गान्धीजी के पत्र, गोखले की विरासत, स्व० महात्मा गोखलेजी का जीवन सन्देश; (सामयिक)—इण्डियन ओपीनियन, नवजीवन, हरिजन बन्धु, यङ्ग इण्डिया, हरिजन।

सन् १९३२ ई० तक गान्धीजी 'नवजीवन' साप्ताहिक पत्र के सम्पादक रहे। प्रति सप्ताह गान्धीजी इस पत्र के द्वारा अपने विचार, सिद्धान्त, उपदेश तथा नारो को गुजराती जनता के सामने प्रस्तुत करते रहे। इन्होंने गुजराती गद्य को एक नई शक्ति प्रदान की। इनकी शैली सरल तथा सुबोध थी। संयम और सच्चाई ने इनकी शैली को गौरव प्रदान किया।

महात्मा गांधी की 'आत्मकथा' का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। दुनिया के आत्मचरित साहित्य में इस पुस्तक को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है। इस पुस्तक में सत्य के अनेक प्रयोगों का वर्णन है। इसमें उम्र भर गांधीजी की एक निष्ठ, सजग तथा सावधान साधना का चित्रण है। 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' भी आत्म-कथा का एक रूप ही है। दक्षिणी अफ्रीका में गांधीजी ने

अपने सत्याग्रह रूपी नए शस्त्र को अजमाया था । यह पुस्तक उसी का संस्मरणात्मक इतिहास है ।

इसके अतिरिक्त गांधीजी द्वारा लिखित कई निबंध तथा पत्र हैं । ये निबंध कई विषयों पर लिखे गये हैं । जैसे—धर्म, कला, अर्थशास्त्र, समाजशात्र, शिक्षण, राजनीति, आरोग्य आदि । हजारों परिचित तथा अपरिचित व्यक्तियों को लिखे गए गांधीजी के पत्रों की संख्या भी अधिक है । इन पत्रों में उन्होंने विविध विषयों को स्पर्श किया है ।

मन्सुखलाल झवेरी के शब्दों में—'अपने लेखों के द्वारा गांधीजी ने स्वच्छ, शुद्ध, स्पष्ट, सरल, निराडम्बर, अतिशयोक्ति रहित तथा सुबोध गद्यशैली का आदर्श प्रस्तुत किया है । अपने लेखों के द्वारा इन्होंने लाखों मनुष्यों में रणोत्साह भरा है । लोगों को उच्चतर तथा भव्यतर जीवन की झाँकी दिखाई है ।' इसके उपरान्त गांधीजी ने अपने व्यक्तित्व से, जीवन दर्शन से, विचारों से अपने समकालीन छोटे बड़े लेखकों तथा कवियों को प्रभावित किया है ।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर 'काका' (जन्म १८८६ ई०)—काका कालेलकर जन्म से महाराष्ट्री हैं किन्तु इन्होंने गुजराती में बहुत कुछ लिखा है । गांधीवादी लेखकों में इनका प्रमुख स्थान है । इनकी प्रमुख कृतियाँ ये हैं—'हिमालय नो प्रवास' 'स्मरण यात्रा' लोकमाता', 'जीवनी नो आनंद', 'जीवन संस्कृति', 'जीवन विकास', 'जीवन भारती' 'पूर्व अफ्रीका मां' तथा 'ओतराती दिवालो' ।

गांधीजी की तरह इनका भी विचार है कि साहित्यिक कला का आधार यथार्थ होना चाहिए तथा उसका उद्देश्य नैतिक तथा सामाजिक उत्थान होना चाहिए । काका साहब की कल्पना तथा प्रेम भावना की धारा इन्हीं दो किनारों के मध्य से बहती रही है । इनके 'हिमालयनो प्रवास' में प्रवास का वर्णन है । कल्पना तथा यथार्थ के मिश्रण के कारण इसमें कहीं कहीं उपन्यास का सा आनंद मिलता है । 'पूर्व अफ्रीका' में भी प्रवास का वर्णन है किन्तु उसमें हिमालयनो प्रवास' की सी मुग्धता तथा ताजगी नहीं है । 'लोकमाता' में भारत की छोटी-बड़ी सभी नदियों का रस दर्शन कराया है । 'जीवननो आनंद' में नक्षत्र, बादल, वन आदि के दर्शन से उत्पन्न आनंद को अनोखी शैली में प्रस्तुत किया गया है । 'ओतराती दिवालो' में जेल जीवन की दशा का चित्रण है । 'स्मैरणयात्रा' में बाल्यावस्था से लेकर कालेज की अवस्था तक का रोचक वर्णन है । इसमें भी कहीं-कहीं उपन्यास का सा आनंद मिलता है ।

काका साहेब ने संस्कृत, अंग्रेजी तथा मराठी साहित्य का अध्ययन किया है । साबरमती आश्रम में आने के बाद गुजराती भाषा तथा साहित्य का अध्ययन किया और गुजराती भाषा पर अधिकार प्राप्त किया । इनके विचारों का केन्द्र

जीवन है। जीवन को ही केन्द्र मानकर इन्होंने नाना प्रश्नों पर विचार किया है। प्रवास तथा परिव्रज्या के कारण इनकी दृष्टि विशाल तथा उदार बनी। अनेक लोगों के सम्पर्क में आने के कारण इनमें सहानुभूति तथा समभाव का उदय हुआ। काका साहब में आदर्शमयता तथा व्यवहार दक्षता, कवित्व तथा विनोद का सुगम समन्वय हुआ है। संक्षेप में ये गद्यकार होते हुए भी कवि हैं। इन्होंने गुजराती निबंध साहित्य, प्रवास साहित्य, आत्मकथा साहित्य तथा गुजराती गद्यशैली के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।

किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला (१८९०–१९५२ ई०)—गांधीवादी लेखकों में काका कालेलकार के पश्चात साधुचरित मशरूवाला का ही नाम आता है। इनकी 'जीवन शोधन' नाम की पुस्तक गुजरात में अत्यधिक लोकप्रिय हुई। इसमें सिद्धान्त तथा अनुभव का समन्वय है। 'गीता धर्म' में इनके धार्मिक विचारों का सम्यक दर्शन होता है। इन्होंने राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, सहजानंद स्वामी तथा 'ईशु ख्रिस्त' पर जीवन चरित्रात्मक पुस्तकें लिखी है। इन महान विभूतियों के जीवन का विवेचन बौद्धिक धरातल पर किया गया है।

'शिक्षा विवेक,' 'शिक्षा विकास' तथा 'शिक्षा का आधार' इनकी शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें हैं। ये पुस्तकें न केवल विद्यार्थियों के लिए बल्कि अध्यापकों तथा अन्य व्यक्तियों के लिए भी उपयोगी हैं। 'स्त्री पुरुष-मर्यादा' में स्त्री-पुरुष के संबंधों, मर्यादा तथा संयम पर अधिक जोर दिया गया है। 'समूली क्रांति में धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों के विषय में प्रौढ़ तथा मौलिक विचार व्यक्त किये गये हैं। गांधी जी की मृत्यु के बाद 'हरिजन' तथा 'हरिजन बंधु' नामक पत्रों के सम्पादन का भार इन्हीं के कंधों पर पड़ा था।

मशरूवाला न केवल गुजरात के बल्कि सम्पूर्ण भारत के श्रेष्ठ विचारकों में से एक थे।

महादेव हरिभाई देसाई (१८९२-१९४२ ई०)—ये गांधीजी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। ये मूलतः साहित्यकार थे किन्तु अपने पद के भार के कारण इस क्षेत्र में ये अधिक आगे नहीं बढ़ सके थे। फिर भी इनकी 'डायरी' (महादेव भाईनी डायरी—५ भागों में) इनकी सर्वोत्तम देन है। ये प्रतिदिन डायरी लिखते थे। इस डायरी में गांधीजी के विचारों तथा जीवन का विशद परिचय है। इसके साथ ही इस पुस्तक में विनम्र, जाग्रत, श्रद्धा बुद्धि सम्पन्न महादेव भाई का भी व्यक्तित्व प्रकट हो जाता है। 'वीर वल्लभ भाई,' 'दो खुदाई खिदमतगार' तथा 'संत फ्रांसिस' इनके सुन्दर जीवन चरित्रात्मक ग्रंथ हैं। इन पुस्तकों में इनकी सूक्ष्म तथा वेधक दृष्टि एवं रसिक गद्यशैली का परिचय मिलता है। इसके उपरान्त इन्होंने खूब प्रासादिक शैली में

टैगोर की 'चित्रांगदा' तथा 'प्राचीन साहित्य' का; शरत की 'विराजबहू' का एवं पं० जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा का गुजराती में अनुवाद किया है।

तीन : आधुनिक कथा साहित्य के स्रष्टा

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी 'घनश्याम' (जन्म १८८७ ई०)—राजनीति, साहित्य तथा शिक्षा—इनके प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं। इन तीनों क्षेत्रों में मुंशी जी पूरी ईमानदारी तथा उत्साह से काम करते आ रहे हैं।

सन् १९१३-१४ ई० में मुंशी जी अपने 'वेरनी वसुलात' (वैर का बदला) नामक प्रथम उपन्यास में नयी वस्तु, नये पात्र, नया संवाद तथा नया जोश लेकर साहित्य के मैदान में उतरे। गोवर्धनराम के सरस्वती चन्द्र के बाद उपन्यास के क्षेत्र में केवल मुंशी जी के द्वारा ही नयी कला का उन्मेष होता है। सरस्वती चन्द्र के लेखक का उद्देश्य शुद्ध कथा कहना नही था बल्कि कथा की ओट में ज्ञान का दीपक जलाना था और फिर सरस्वतीचन्द्र जैसे विशाल ग्रन्थ के पाठक कितने हैं ? किन्तु मुंशी जी शुद्ध उपन्यासकार के रूप में सामने आते हैं। 'वेरनी वसुलात' में निरर्थक विस्तार नहीं है, पांडित्य भरी चर्चा नहीं है तथा विषयान्तर नहीं है। उनकी पहली ही कृति इन दोषों से मुक्त है। इस उपन्यास की कथा में वेग है तथा रसिकता है। इसलिए इस कृति ने गुजराती जनता को मुग्ध कर लिया। कुछ समीक्षकों ने मुंशी जी की कला पर एलेक्जांडर ड्यूमा का प्रभाव बताया है।

सोलंकी युग की कीर्ति गाथा लेकर 'पाटणनी प्रभुता' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। फिर 'गुजरातनो नाथ', 'राजाधिराज', 'जय सोमनाथ' तथा 'पृ-वी बल्लभ' आदि अन्य ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए। इन कृतियों ने मुंशी जी को गुजरात का सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार का पद प्रदान किया। इन्हीं में उनकी सर्जक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। इन उपन्यासों में मुंशी जी ने अपने गंभीर अध्ययन, अनुभूति तथा रूप विधायनी कल्पना के द्वारा अतीत को सजीव कर दिया है। 'बैर का बदला' के अलावा 'किसका दोष', 'स्वप्नद्रष्टा' 'रुहि संग्रह' तथा 'तपस्विनी' इनके सामाजिक उपन्यास हैं।

मुंशी जी ने सामाजिक तथा पौराणिक नाटकों की भी रचना की है। कहीं-कही सामाजिक नाटकों में आधुनिक समाज के दंभ पर कटाक्ष किया गया है। 'काकानी शशी', 'ब्रह्मचर्याश्रम,' 'बे खराब जण,' 'पीड़ाग्रस्त प्रोफेसर' आदि इनके मनोहर नाटक हैं। 'आधे रास्ते,' 'सीधी चढ़ान,' 'मेरी अनुत्तरदायित्वपूर्ण कहानी' 'शिशु और सखी' आदि में मुंशी जी ने अपने जीवन को कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है। ये पुस्तकें रचनात्मक साहित्य की कोटि में आती हैं। 'गुजरात एन्ड इट्स लिट्रेचर', 'थोडांक रस दर्शनो', 'नरसैयो भक्त हरिनो' आदि वचनों (१—२) 'नर्मद-

अर्वाचीनो मां आद्य' में मुंशी जी एक सफल समीक्षक तथा जीवन चरित्र लेखक के रूप में सामने आते हैं। इनमें गुजराती साहित्य का परिचय आकर्षक रीति से कराया गया है।

अर्वाचीन गुजराती में मुंशी जी जैसा प्रतिभाशाली उपन्यासकार तथा नाटक॰कार मिलना दुर्लभ है। एक प्रकार से ऐतिहासिक उपन्यासों का आरम्भ तो इन्हीं के द्वारा होता है। इसकी दृष्टि मे विचार करने पर ये सर्वश्रेष्ठ सर्जक कहे जा सकते हैं। ये अर्वाचीन गुजराती साहित्य में 'रोमांटिसिज्म' के प्रवर्तक माने जाते हैं।

मुंशी जी में बहु-वस्तु स्पर्शिनी प्रतिभा तथा जागरूक भावुकता है। लगभग पाँच दशकों से ये साहित्य की सृष्टि करते आ रहे हैं और आज चौहत्तर वर्ष की आयु में भी इनके जीवन में तथा लेखनी में वही स्फूर्ति तथा गति है।

रमणलाल वसंतलाल देसाई (१८९२-१९५४)—आरम्भ में इन्होने नानालाल तथा 'कलापी' की कविताओं का अध्ययन किया। इनके मन में साहित्य के प्रति अभिरुचि जागी फिर ये साहित्य सर्जन की ओर प्रवृत्त हुए। १९२० ई० में इन्होंने 'संयुक्ता' नामक नाटक लिखकर साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। कुछ दिन के ाद 'शंकित हृदय' (नाटक) भी प्रकाशित हुआ। लेकिन इनकी प्रतिभा का सच्चा परिचय तो इनके 'जयंत,' 'शिरीष,' 'कोकिला' आदि उपन्यासों में ही मिलता है। ये उपन्यास गुजरात में अत्यधिक लोकप्रिय हुए। फिर तो एक के बाद दूसरे उपन्यास निकलने लगे।

रमणलाल ने आधुनिक गुजराती जीवन के मंगलमय अंश का ही चित्रण किया है। गांधीजी के प्रभाव से युवकों में जो आदर्श-भावना, त्यागवृत्ति, औदार्य आदि का उदय हुआ था अथवा होना चाहिये था वही आदर्श रमणभाई के नायकों में प्रतिबिम्बित हुआ है। तेजयुक्त सुकुमारता, सेवायुक्त आत्मगौरव आदि जो गुण गांधी युग की नारियों में था अथवा होना चाहिये था वही गुण इनकी नायिकाओं में दिखाई पड़ता है। इस महिमाशाली लेखक ने अपने उपन्यासों में धनी, गरीब, किसान, मजदूर, दलित, पतित—सभी के जीवन के उज्ज्वल अंश को चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

रमणलाल गुजरात के प्रेमचन्द हैं। इनकी 'पूर्णिमा' सत्याग्रह युग की करुण बलिदान-कथा है; 'ग्राम लक्ष्मी' ग्राम सेवा के आदर्शों से पूर्ण है; 'भारेलो अग्नि' में गांधीजी की अहिंसा आदि विचारधारा का चित्रण है। इस प्रकार लेखक ने गांधीजी के आदर्शों को अपने कथा साहित्य के द्वारा जनता के हृदय तक पहुँचाया है। 'क्षितिज' में आर्यों तथा अनार्यों के सांस्कृतिक संघर्ष की कथा है।

कुछ समय के पश्चात् गांधीवादी तथा समाजवादी विचारों के अलावा इनको कल्पना साम्यवादी विचार-पथ पर भी अग्रसर हुई। 'प्रलय', 'सौन्दर्य' तथा 'छायानट'

में इनके साम्यवादी विचारों की झलक दिखाई पड़ती है। मेवाड़ के बाप्पारावल को सजीव करने वाला इनका ऐतिहासिक उपन्यास 'कालभोज' है।

'झाकरा', 'पंकज', 'इस बिन्दु', 'कांचन अने गेरु' इनके कहानी संग्रह हैं। 'संयुक्त', 'शंकित हृदय', 'अंजनी', 'परी अने राजकुमार' आदि इनके नाटक हैं। भावनाशील रमणलाल की कविताओं का संग्रह 'निहारिका' है। इनकी कविताओं पर 'कलापी' की हार्दिकता तथा नानालाल के शब्द वैभव का प्रभाव दिखाई पड़ता है। रमणलाल केवल सर्जक ही नहीं थे बल्कि विचारक और समीक्षक भी थे। 'भारतीय संस्कृति', 'गुजरातनु घडतर', 'जीवन-साहित्य', 'साहित्य अने चिन्तन' में इनको चिन्तन शक्ति का परिचय मिलता है। 'अप्सरा' में वेश्याओं का इतिहास चित्रित है।

लेकिन और बहुत कुछ लिखने पर भी रमणलाल प्रधानरूप से उपन्यासकार ही थे। ये गुजरात के उपन्यासकारों में गोवर्धनराम के पश्चात् श्रेष्ठ सफल सामाजिक उपन्यासकार माने जाते हैं। अपने उपन्यासों में इन्होंने अपने युग को प्रतिबिम्बित कर दिया है। श्री विश्वनाथ भट्ट ने इन्हें 'युगभूति वार्ताकार' कहा है। एक दूसरे समीक्षक ने इन्हें 'गांधी युग के प्रवर्तमान जीवन का पहला सफल उपन्यासकार' कहा है।

गौरीशंकर गोवर्धनराम जोषी 'धूमकेतु' (जन्म १८९२)—ये अपने 'धूमकेतु' उपनाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं। रमणलाल की तरह इन्होंने भी उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, प्रवास वर्णन, मनन मौक्तिको आदि विविध साहित्य स्वरूपों का सर्जन किया है। किन्तु ये कहानीकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। इनका प्रथम कहानी संग्रह 'तणखा' (चिनगारी) १९२६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व बहुत से लेखक कहानी लिख चुके थे किन्तु कहानी कला के सर्वाङ्गसुन्दर स्वरूप का परिचय तो धूमकेतु की लेखनी के द्वारा ही मिलता है। कहानी की कथावस्तु में इन्होंने एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया। पहली बार गरीब तथा पतित लोगों के जीवन को कला के द्वारा अमरत्व प्रदान किया गया। 'मशहूर गवैया' में कलाकार की मस्ती का वर्णन है। संगीतज्ञ इन्द्रमणि तारा से प्रेम करता है। किन्तु जब तक इन्द्रमणि सङ्गीत की आत्मा को नहीं पा जाता तब तक तारा विवाह के लिए तैयार नहीं होती है। इन्द्रमणि सङ्गीत की आत्मा की खोज में निर्जन स्थानों में घूमा करता है। इस खोज में वह अपनी सारङ्गी को अपने जीवन से भी अधिक प्यार करने लगता है। अन्त में सङ्गीतज्ञ सङ्गीत की आत्मा को प्राप्त करता है। तारा प्रसन्न होकर विवाह करती है। किन्तु सारङ्गी के प्रति पति की आसक्ति देखकर वह सारङ्गी से ईर्ष्या करने लगती है फिर वह सारङ्गी को त्यागने के लिए पति से हठ करती है। इन्द्रमणि सारङ्गी को अन्तिम बार बजाता है। सुनकर तारा

तथा उसके पड़ोसी रोने लगते है। फिर सङ्गीतज्ञ अपनी सारङ्गी को त्यागता तो जरूर है किन्तु उसके साथ अपने जीवन को भी त्याग देता है।

'मद भर नैना'; 'जुमो भीरती'; 'भैयादादा' तथा 'पोस्ट ऑफिस' मे गरीबो के जीवन का करुण मनोहर चित्रण है। 'गोविन्दनुं खेतर' आदि मे ग्राम जीवन का मनोरम चित्र है। 'राजपूताणी' मे मध्ययुगीन राजपूतो की शौर्य कथा है। इस प्रकार हम देखते है कि धूमकेतु ने समाज के कई अंगो से अपनी कहानी का विषय चुना है। सिद्ध हस्त लेखक ने दलित, पीडित, उपेक्षित, असंस्कारी, अभद्र, अशिक्षित व्यक्तियों के जीवन की करुणा को तथा उनके जीवन की विषमता को बडी कुशलता से चित्रित किया है। अपनी कला के द्वारा लेखक ने समाजवाद को जनता के हृदय तक पहुँचाया है। इनकी कहानियो के पात्र संवेदनशील है। कल्पना प्रधान प्रसंगों की योजना करने मे लेखक की असाधारण शक्ति का परिचय मिलता है। धूमकेतु की भाषा-शैली असाधारण शक्तिमयी, स्वच्छ, शिष्ट, शुद्ध, मधुर तथा काव्यत्व से पूर्ण है। 'तणखा' (चिनगारी —चार भाग), 'अवशेष', 'प्रदीप', 'आकाशदीप', 'मेघबिन्दु' 'परिशेष' 'अनामिका' 'बनछाया' 'बरगद की छाया मे' 'बोध कथाएँ' 'ज्ञानगोष्ठियाँ' आदि इनकी कहानियों के संग्रह है।

सफल कहानीकार के साथ-साथ धूमकेतु सफल उपन्यासकार भी है: इनका 'चौलादेवी' नामक उपन्यास भावनाशील तथा तेजस्वी पात्रो के कारण आम जनता में अधिक लोकप्रिय हुआ। इसमे लेखक ने आदर्श प्रधान आकर्षक पात्रो की सृष्टि की है। इस आदर्शमयता के आग्रह के कारण कही-कही अस्वाभाविकता आ गयी है। 'राजमुकुट', 'पृथ्वीश', 'मल्लिका', 'पराजय' आदि इनके सामाजिक उपन्यास है। 'चौलादेवी' 'राजसंन्यासी', 'कर्णावती', 'जयसिंह', 'सिद्धराज', 'गूर्जरेश्वर कुमारपाल' 'नायिकादेवी' आदि इनके ऐतिहासिक उपन्यास है। इनके उपन्यासो मे जगह-जगह मुंशीजी की छाया दिखाई पड़ती है। इन्होने भी सोलंकी युग के गुजरात का गौरव-गान किया है। किन्तु धूमकेतु के उपन्यासो मे स्वप्नशीलता है, प्रसंगो का मनोरम चित्रण है; जीवन के विषय मे उच्च तथा गम्भीर चिन्तन है एवं शिष्ट मिष्ट वाणी का वैभव है।

कहानी तथा उपन्यास के अतिरिक्त धूमकेतु की अन्य रचनाएँ भी महत्वपूर्ण है। 'जीवन चक्र' इनकी चिन्तनात्मक कृति है। 'पानगोष्ठी' हास्यरस प्रधान निबन्धों का सग्रह है। 'पडघा'; ठंडी क्रूरता'; 'एकलव्य' इनके नाटक है। श्री हेमचन्द्राचार्य, नेपोलियन, ह्वेनसाग आदि जीवन-चरित्र है। 'जीवन पंथ', 'जीवन रंग', आत्मकथा हैं तथा 'पगडंडी' यात्रा वर्णन है।

झवेरचन्द कालिदास मेघाणी (१८९७-१९४७)— **मुख्य कृतियाँ**–(काव्य)–

युगवन्दना, एकतारो, रवीन्द्र वाणी; (उपन्यास)–सोरठ, तारां वहेता वाणी, तुलसी क्यारो, वेविशाल, गुजरातनो जय (दो भाग), वसुन्धरानां वहालां दवलां; (कहानी)–मेघाणीनी नवलिकाओ—दो भाग; (लोक साहित्य)–सौराष्ट्रनी रसधार छः भागों में, रढियाणी रात दो भागों में, चुंदड़ी, कंकावट, सोरठी, कहाम्वटिया, सोरठी संतो; धरतीनुं धावण दो भागों में।

मेघाणीजी की कल्पना ने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, समीक्षा, आदि साहित्य के अनेक क्षेत्रों में भ्रमण किया है। ये प्रधान रूप से जनता के लेखक थे। इन्होंने अधिक से अधिक जनता के हृदय को स्पर्श किया है। इनका साहित्यिक जीवन पत्रकार के रूप में आरम्भ हुआ था। 'सौराष्ट्र' में, फिर 'जन्मभूमि' बराबर लिखते रहने के बाद मेघाणीजी 'फूलछाब' नामक पत्र के दस वर्ष तक सम्पादक रहे।

अथक परिश्रम तथा धैर्य से मेघाणीजी ने गुजराती के लोक साहित्य का संशोधन तथा संपादन किया है। इनके द्वारा यह बहुत ही महत्वपूर्ण काम हुआ। इन्होंने जनता में प्रचलित लोक गीतों, भजनों, कथाकाव्यों, प्रेम तथा शौर्य की कथाओं आदि का संग्रह प्रकाशित किया। इस प्रकार इन्होंने जनता के साहित्य को लुप्त होने से बचा लिया था।

'समरांगण' 'रा गंगा जलियो' तथा 'गुजरात नो जय' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों में मेघाणीजी ने गुजरात तथा काठियावाड़ का वास्तविक चित्र खींचा है। उपन्यास कला तथा इतिहास—दोनों के प्रति लेखक ने पूरी ईमानदारी का परिचय दिया है। 'वे विशाल' तथा 'तुलसी क्यारो' में लेखक ने सामान्य स्त्री-पुरुष के मानवतावादी दृष्टिकोणों का चित्रण किया है। मेघाणीजी के सामाजिक उपन्यासों में गुजरात के मध्यम वर्ग का यथार्थ जीवन चित्रित है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में लेखक ने निपुणता का परिचय दिया है। स्त्री पात्रों का चित्रण अधिक मनोरम हुआ है। उनकी स्त्रियाँ प्रधानतया माता के रूप में निर्मित हुई है। उनमें उदारता है, एकनिष्ठ आत्म विसर्जन है, क्षमाशीलता है तथा मंगलमय वात्सल्य है। मेघाणी जी की शैली सादी, प्रवाही तथा उद्‌बोधक है। अपनी कहानियों में लेखक ने लोक हृदय के भावों का चित्रण किया है। शायद इसीलिए वे गुजरात तथा सौराष्ट्र में अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं।

कविता—'युगवंदना', 'किल्लोल', 'वेणीना फूल' आदि इनकी कविताओं के संग्रह हैं। 'युगवंदना' की भूमिका में कवि ने लिखा है कि मैंने अपनी कविताओं में कवि हृदय अथवा मानव हृदय के सनातन भावों को चित्रित करने का प्रयत्न नहीं किया है। मैंने केवल गांधी युग के तत्कालीन भावों को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। कवि द्वारा व्यक्त इस सीमा को स्वीकार करने पर मेघाणी जी को गांधी युग का

सफल कवि कहा जा सकता है। ये मन की मौज के अनुसार किसी भी विषय पर पद्य-रचना कर सकते थे। इनकी कविताएँ सुगेय तथा कर्ण मनोहर बन पडी हैं। "लोक गीतों के माधुर्य को आस्मसात करने वाले इस बुलंदकंठी गायक ने 'वेणीना फूल' तथा 'सिंधु डो' में लोकवाणी की रमणीयता को फिर से जीवित कर दिया।" 'वेणीना फूल' में घरेलू जीवन मधुर भावों की तथा प्रकृति के रम्य रूपो का चित्रण है और 'सिंधुडो' में जाग्रत देश की गर्जना है। अपनी लोक भोग्य, रसप्रद राष्ट्रीय कविताओ के कारण मेघाणीजी कविता के क्षेत्र मे भी सदा अमर रहेगे।

रामनारायण विश्वनाथ पाठक 'द्विरेफ' ; 'स्वैरबिहारी' ; 'शेष' (१८८७-१९५४)—प्राध्यापक पाठक समीक्षक के रूप मे अधिक प्रसिद्ध रहे है। 'साहित्य विमर्श', 'काव्यनी शक्ति', अर्वाचीन काव्य साहित्यनां वहेणों, अर्वाचीन गुजराती कविता साहित्य; 'आलोचना' आदि इनके समीक्षात्मक ग्रंथ है। 'प्राचीन गुजराती छंदो' पर इन्हे 'काटावाला पारितोषिक' मिला था तथा 'बृहत् पिंगल' के लिए ये भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत हुए थे। इन आलोचनात्मक पुस्तकों में लेखक ने अपनी काव्य कला की सूक्ष्म परख तथा तर्क-शुद्ध मनन शक्ति का परिचय दिया है।

'द्विरेफ' उपनाम से इन्होने कहानियाँ लिखी है। 'द्विरेफनी बातो' (तीन भागो मे) इनकी कहानियो के संग्रह है। एक के बाद दूसरे कहानी संग्रहो मे इनकी सूक्ष्म दृष्टि, शक्ति, कला तथा भाषा का क्रमशः विकास दिखाई पड़ता है। किन्तु 'द्विरेफनी बातो' के तीसरे भाग में लेखक ने जातीय प्रश्नो को स्पर्श किया है। 'सौभाग्यवती', 'छेल्लो दाडक्य', राजाभोज, 'उत्तरापथनो लोप' आदि कहानियाँ इसी प्रकार की है। फिर भी इनकी बहुत सी कहानियाँ उच्चकोटि का है। 'मुकुन्दराय', 'खेमो' तथा 'जक्षणी' इनकी लोकप्रिय कहानियाँ है। इन कहानियो मे जीवन का मार्मिक रहस्य दर्शन तथा सुश्लिष्ट आयोजन है। इनकी शैली सरल तथा निराडम्बरा है। 'धूमकेतु' तथा 'द्विरेफ' गुजराती साहित्य के दो श्रेष्ठ कहानीकार माने जाते है। इनमे धूमकेतु का स्थान प्रथम है। धूमकेतु मे भावना की प्रधानता है किन्तु द्विरेफ मे बुद्धि की प्रधानता है।

'स्वैरबिहारी' के उपनाम से इनके हास्य रस प्रधान निबंधो का संग्रह 'स्वैरबिहार' (दो भागो मे) है। इनमे लेखक ने इस युग की परिस्थितियो मे पले मानव स्वभाव की असंगतियों पर निर्दोष कटाक्ष किया है। इन निबंधो मे 'स्वैर-बिहारी' की सूक्ष्म तथा शिष्ट विनोद वृत्ति का परिचय मिलता है।

'काव्य समुच्चय' (दो भागों मे), 'काव्य परिचय' (दो भागों मे), 'काव्य तत्व विचार', 'विचार माधुरी' आदि ग्रंथो का सम्पादन भी प्राध्यापक पाठक ने किया है।

इसके अतिरिक्त इन्होंने 'काव्य प्रकाश' (एक से छः उल्लास तक) का अनुवाद भी किया है।

प्राध्यापक पाठक 'प्रस्थान' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक भी थे। अपनी पत्रिका की सफलता के लिए इन्हें बहुत कुछ लिखना पड़ता था। शायद इसीलिए प्रा० पाठक साहित्य के विविध क्षेत्रों में इतना अधिक लिख सके थे।

'शेष' उपनाम से रचित इनकी कविताओं का संग्रह 'शेषना काव्यो' है।

चूनीलाल वर्धमानशाह 'साहित्य प्रिय' (१८७७)—ये 'प्रजाबंधु' के सम्पादक रह चुके हैं। इन्होंने कई ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासों की रचना की है। जासूसी उपन्यास भी लिखा है। इनका पहला ऐतिहासिक उपन्यास 'सोमनाथनु' शिवलिंग, महमूद गजनी की सोमनाथ के ऊपर चढ़ाई के प्रसंग को लेकर लिखा गया है। इसके बाद तो इनकी कला में कुछ विकास हुआ और ऐतिहासिक उपन्यासकारों में इन्हें भी एक स्थान प्राप्त हुआ। उपन्यास के प्रस्थान तथा प्रयोग की दृष्टि से इनका स्थान गुजराती साहित्य में अधिक महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु सर्वसामान्य जनता की कथा-भूख की तृप्ति के लिए इन्होंने विपुल संख्या में उपन्यासों की रचना की है। 'जिगर और अमी' तथा 'भस्मरेखा' नामक सत्य घटनात्मक उपन्यासों ने तो गुजरात में तहलका मचा दिया था। सरल भाषा में तथा निराडम्बर शैली में लिखित इनके उपन्यासों का एक ही लक्ष्य है और वह है लोगों को कथारस से तृप्त करना।

श्रीमती लीलावती मुंशी (जन्म १८९९)—**प्रमुख कृतियाँ**–रेखाचित्र अनेबीजा लेखो (१९२५), कुमारदेवी (१९३०); जीवन मांथी जडेली (१९३२), बधु रेखा चित्रो अनेबीजा बधून (१९३५)।

श्रीमती मुंशी की प्रतिभा ने साहित्य के कई रूपों को स्पर्श किया है। लघु उपन्यास, कहानी, एकांकी, निबन्ध, रेखाचित्र आदि कई क्षेत्रों में आपकी कल्पना विहार करती आ रही है और हृदय रमता आ रहा है। आपकी कृतियों में आधुनिक नारी का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। कुछ कहानियों में पुरुष की लोलुपता का यथार्थवादी चित्रण है। 'कशमीरनी डायरी' तथा 'यूरोपना पत्रो' में प्रकृति के रमणीय रूपों का चित्रण है। लेकिन सबसे अधिक सफलता आपको अपने रेखाचित्रों में ही मिली है।

गुणवंतराय आचार्य (१९०२)—इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, साहसिक, जासूसी आदि सभी प्रकार के उपन्यासों को लिखकर चूनीलाल की तरह से ही गुजराती साहित्य की सेवा की है। 'दरियालाल' इनका समुद्री साहसिक कथा के रूप में प्रसिद्ध है। 'पुत्र जन्म', 'गोरख आया', 'दरिद्र नारायण' आदि इनकी प्रमुख कृतियाँ है। 'अल्लाबेली' नाटक है।

गुणवंतराय आचार्य की सागर जीवन तथा अन्य साहस भरी कथाएं प्रसिद्ध है। अपने सामाजिक उपन्यासों में अर्वाचीन जीवन के कई संघर्षों को चित्रित करने का प्रयास किया है।

गुलाबदास हरजीवनदास ब्रोकर (१९०९)—'लता अने बीजी बातो', 'वसुन्धरा अने बीजी बातो', 'उमीवाटे' है तथा 'पुण्य परवार्यु नथी' आदि ब्रोकर की कहानियाँ हैं। सुशिक्षित नागरिक जीवन से कथावस्तु लेकर इन्होने अपनी कहानियों की रचना की है। इनकी कुछ कहानियाँ मनोवैज्ञानिक हैं। इनकी कहानियों पर पश्चिम की कहानी कला का विशेष प्रभाव दिखाई पडता है। ये कहानी कला के कुशल शिल्पी हैं।

पन्नालाल नानालाल पटेल (१९१३)—प्रारम्भ में इनकी कहानियाँ 'प्रस्थान' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुईं। इससे इन्हे कुछ ख्याति मिली। फिर मेघाणी जी के 'फूल छाब' में भी इनकी रचनाएं प्रकाशित हुईं। कुछ समय के बाद 'मगेला जीव' नामक इनके प्रथम उपन्यास का 'उलझन' नाम से चित्र भी बना। किन्तु यह चित्र असफल रहा।

पन्नालाल पटेल को उत्तर गुजरात के ग्रामीण जीवन का अच्छा परिचय था। 'ग्राम लक्ष्मी' ग्राम जीवन को चित्रित करने वाला उपन्यास है। लेकिन इसमें ग्राम जीवन के प्रति केवल सहानुभूति ही व्यक्त हुई है, सम्पूर्ण वातावरण के साथ ग्राम जीवन का सजीव चित्रण नही है। ग्राम जीवन को चित्रित करने वाला पन्नालाल का सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास 'मानवीनी भवाई' है। इस उपन्यास में लेखक ने गाँव के किसानों, उनकी कठिनाइयों का यथार्थ चित्र खीचा है। 'वलामण' मे अपनी धरती के प्रति एक ग्राम-कन्या की ममता का चित्रण है। 'यौवन', 'सुरभी', 'भीरु साथी' इनके शहरी जीवन को चित्रित करने वाले उपन्यास है। लेकिन शहरी जीवन के चित्रण मे इन्हे अधिक सफलता नही मिली। 'सुख-दुःखना साथी', 'लख चारासी' 'पाने तरना रंग', 'साचा समणा' आदि इनकी कहानियो के संग्रह है।

पन्नालाल प्रथम गुजराती लेखक है जिन्होंने ग्राम जीवन को यथार्थ रूप मे तथा ईमानदारी से चित्रित किया है और गुजराती लोकभाषा की शक्ति का परिचय दिया है। गुजराती साहित्य को यही इनकी सबसे बड़ी देन है।

ईश्वर पेटलीकर (१९१६)—ये सामाजिक मासिक पत्रिका 'पाटीदार' (नया नाम 'संसार') के सम्पादक हैं। 'जनमटीप', 'मारी हैयासगडी', 'मझलाण' आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। पन्नालाल की तरह इन्होंने भी अपने उपन्यासों में ग्राम जीवन का चित्रण किया है किन्तु इनके उपन्यासों में पन्नालाल की तरह सांगोपांग कला विधान नही है। फिर भी पेटलीकर में पात्रों की विविधता है, एक के

बाद एक प्रसंगों की सृष्टि है। 'लोहीनी सगाई', कागीनु करवत' आदि इनकी कहानियों के संग्रह है। इनकी लोहीनो सगाई अत्यधिक प्रसिद्ध हुई है। पेटलीकर मानस विश्लेषण करने वाली लम्बी कहानी लिखते है।

चूनीलाल मडिया (१६२२)—नवीन कल्पना साहित्य के सर्जकों में मडिया जी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'व्याजनो वारस', 'पावक ज्वाला', 'ईंधण ओछा पड्या', 'पद्मजा', 'चंपो अने केल' आदि इनके कहानी संग्रह है। 'रंगदा'. 'हु अने मारी वहु' इनके नाटक है। इनकी कुछ कहानियाँ जातीय विकृति को केन्द्र मान कर रची गयी है। नवीन पाश्चात्य कथा साहित्य का इन पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। लोक भाषा पर इनका अच्छा अधिकार है। इनकी कृतियों मे स्थल, समय और पात्रों की विविधता है। गुजराती साहित्य को इनमे बहुत बड़ी आशा है।

सुरेश जोशी (१६२१)—कवि और आलोचक श्री सुरेश जोशी गुजराती साहित्य के प्रयोगशील तथा यथार्थवादी कहानीकार है। इनकी प्रतीक शैली ने गुजरात के साहित्य रसिकों को आकर्षित किया। इन्होंने गुजराती कहानी को एक नया मोड दिया है। इन्होने रवीन्द्र साहित्य का गहन अध्ययन किया है और गुजरात को रवीन्द्र साहित्य का रसात्मक परिचय कराया है। इनकी समीक्षा में लेखक की अध्ययनशीलता तथा मनन शक्ति का परिचय मिलता है। लेखक ने बडी निर्भीकता से प्रमुख लेखकों के गुण दोष का विवेचन किया है।

चार : प्रमुख कवि

[गांधी युग की कविता की विशेषता को जानने के लिए देखिए पृष्ठ ७१]

त्रिभुवनदास पुरुषोत्तमदास लुहार 'सुन्दरम्'; 'त्रिशूल' (जन्म सन् १६०८ ई०) —'कोयाभगतनी कडवी वाणी' मे श्री सुन्दरम् ने पुरानी भजनों के ढंग पर समाजवादी भावना से पूर्ण गीतों की रचना की है। गांधीवादी विचारधारा से पूर्ण तथा ठाकोर का अगेय प्रवाही छंदो मे इनकी 'काव्य मंगला' प्रकाशित हुई। इस संग्रह में गाधी जी के जीवन से संबंधित कुछ कविताए है, प्रणय सॉनेट हैं, तथा कुछ मधुर गीत है। शैली ललित तथा प्रसाद गुण पूर्ण है। इसके बाद वसुधा का प्रकाशन हुआ। फिर १६५१ ई० मे श्री अरविन्द के दर्शन की स्पष्ट छाप लेकर 'यात्रा' निकली। चिन्तन प्रधान कविताओं में 'यात्रा' का महत्वपूर्ण स्थान है।

'होराकणी अने बीजा वातो', 'खोलकी अने नागरिका', 'पियासी' तथा 'उन्नयन' इनकी कहानियों के संग्रह है। इनके 'पियासी' की गणना श्रेष्ठ कहानी संग्रहो मे का जाती है। सुन्दरम् की कहानियो का विशेषता है—विषय की नवीनता तथा प्रसन्न-मधुर चित्रण की रीति।

सुन्दरम् एक उच्चकोटि के विद्वान समीक्षक भी है। इनका 'अर्वाचीन कविता' एक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथ है। श्रेष्ठ कवि होने के नाते सुन्दरम् ने अपने इस ग्रंथ में कवियो तथा उनकी कविताओं का उचित मूल्यांकन किया है। इस पूर्वग्रह विमुक्त तथा नीडर समीक्षक ने कविताओ के गुण-दोष को स्पष्ट रूप मे प्रकट किया है। यह ग्रंथ लेखक की मनन शक्ति का द्योतक है।

सुन्दरम् ने गाधीवादी विचारधारा को कला का रूप दिया है। इनकी कविता मे भाव और चिन्तन का, सुकुमारता और भव्यता का समन्वय है। इनकी शैली निर्व्याज मनोहर तथा निःशेष रमणीय है।

उमाशंकर जेठालाल जोशी 'वासुकि' (जन्म १९११ ई०)—सन् १९३१ ई० मे इनका प्रथम काव्य ग्रंथ 'विश्वशान्ति' प्रकाशित हुआ। यह विचार प्रधान खंड काव्य है। इसमे न केवल मनुष्य मे बल्कि मानवेतर प्राणियो मे भी कवि शान्ति और प्रेम का प्रसार देखना चाहता है। जब तक ससार मे हिसा है तब तक विश्व शान्ति असम्भव है। कवि की इस भव्य कल्पना के अनुरूप ही कवि की भाषा है। कवि और समीक्षक सुन्दरम् ने 'विश्व शान्ति' से ही कविता म नए युग का आरंभ माना है। इसके बाद इनका दूसरा काव्य संग्रह 'गंगोली' निकला। इन कविताओ मे कवि ने कोमल-मधुर भावो तथा विचारों को तेजस्वी वाणी मे व्यक्त किया है। फिर 'गुलेपोलाड' तथा 'निशीथ' का प्रकाशन हुआ। 'गुलेपोलाड' मे पोलेन्ड के एक कवि की कई सॉनेट का सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। 'निशीथ' कविता सग्रह है। इसमे की कई कविताएं कवि को चिन्तन शक्ति तथा कल्पना शक्ति का परिचय देती है। इस संग्रह का कविताओ मे कवि की भाषा अधिक संस्कृत प्रचुर है तथा स्वस्थ एवं संयमित शैली है। 'प्राचीना' 'आतिथ्य' तथा 'वसंत वर्षा' इनके अन्य काव्य संग्रह है। विचार प्रधान और अगेय कविता की अपेक्षा ऊर्मिप्रधान गेय रचनाओ के प्रति कवि का अनुराग बढता ही जा रहा है। 'प्राचीना' मे प्राचीन कथावस्तु के सहयोग से अर्वाचीन जीवन की नवीन विचारधाराओ को कवि ने पद्य नाटक के स्वरूप मे व्यक्त किया है।

सुन्दरम् तथा जोशी इस युग के प्रतिभा सम्पन्न कवि है। "सुन्दरम् मे दृष्टि की अपूर्वता है, उमाशंकर मे अभिव्यक्ति की कलामयता है। सुन्दरम मे भावना की मस्ती तथा उद्रेक है; उमाशंकर मे मधुर नागरिकता तथा संयम है।"—(झवेरी)।

'सापनाभारा' तथा 'शहीद' इनके एकाकी नाटिकाओ के संग्रह है। सर्वश्रेष्ठ एकाकी 'सापनाभारा' मे कवि ने ग्राम जीवन का तथा नारी की असमर्थता का यथार्थ एवं करुण वर्णन किया है। 'त्रण अर्धु बे अने वीजी वातो', 'श्रावणी मेलो', 'अन्तेराय' आदि इनकी कहानी संग्रहो के नाम हैं। इन कहानियो मे 'चक्की नुं भूत' इनकी

अच्छी कहानी मानी जाती है। इन्होंने 'पारकाजन्या' नामक उपन्यास भी लिखा है किन्तु इस कला में जोशीजी सफल नहीं हुए है।

'अखो—एक अध्ययन' मध्यकालीन अखा भगत की कविताओं पर एक आलोचनात्मक ग्रन्थ है। इसमें उस समय की सभी काव्य प्रवृत्तियों का भी परिचय दिया गया है। 'पुराणो मां गुजरात'; 'समसवेदन', 'निरीक्षण' तथा 'शैली अने स्वरूप' भी इनके समीक्षात्मक ग्रन्थ हैं। इनमें एक समीक्षक की विद्वत्ता तथा कवि की मधुरता का समन्वय हुआ है।

'संस्कृति' मासिक पत्रिका के सम्पादक के रूप में देश-काल की नाना समस्याओ पर जोशोजी अपना मत साहित्यिक रूप से प्रकट करते आ रहे हैं।

चन्द्रवदन चीमनलाल मेहता (जन्म सन् १९०१ ई०)—ये कवि, नाटककार तथा उपन्यासकार है। 'इलाकाव्यों' तथा 'रतन' में मेहताजी की काव्य-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। 'इलाकाव्य' में कवि ने भाई तथा बहन के भोले एवं निर्मल प्रेम का वर्णन किया है। इसमें बचपन के निर्दोष जीवन की स्तुतियों का रोचक चित्रण है। रतन कवि का प्रवाही दीर्घकाव्य है। इनकी सॉनेट्स् सुन्दर बन पड़ी है।

श्री मुंशीजी के बाद मेहताजी दूसरे समर्थ नाटककार हैं। इनके नाटकों की वस्तु में नवीनता है तथा संवादों में सजीवता है। मेहताजी एक उत्तम अभिनेता भी हैं। इसलिए इनके नाटक रंगमंच के लिए उपयुक्त हैं। 'आगगाड़ी' इनका करुणान्त नाटक है। 'नागाबाबा', 'पिंजरापोल', 'मूगी स्त्री' आदि इनके यथार्थ जीवन को चित्रित करने वाले हास्यरस प्रधान नाटक हैं।

श्री चन्द्रवदन मेहता की आत्मकथा—'बाँध गठरिया' रोचक प्रसंग तथा सरस वेगवान शैली के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुई है।

पूजालाल रणछोडलाल दलवाड़ी (जन्म १९०१ ई०)—**कृतियाँ**—काव्य—पारिजात, उर्मिमाला, जयमाला।

पंडित युग के बाद इस नवीन कविता के युग में पूजालाल ने ही विशेष रूप से भक्ति काव्य की रचना की है। 'शिष्ट तथा गौरवभरी भाषा', प्रसन्न शैली, सुगठित छंदों, रचना एवं भक्त हृदय की मुग्धता तथा श्रद्धा इनकी कविताओं की विशिष्टता है।" (म० झवेरी) इस समय आप श्री अरविन्द आश्रम में रहकर साधना कर रहे हैं।

करसनदास नरसिंह माणेक 'वैशंपायन' (१९०२)—आप कवि हैं, नाटककार हैं तथा उपन्यासकार भी हैं। इसके अतिरिक्त आप जनरंजनकारी कथावाचक है। आप जिस समय अपनी मधुरकंठी शिष्यायों के साथ गागर पर ताल देकर कथा सुनाने लगते हैं उस समय जनता रसमग्न हो जाती है। 'आलबेल', 'महोबतने मांडवे'

'कल्याण यात्री', 'वैशंपायननी वाणी' (दो भागों में) आदि आपकी काव्य कृतियाँ हैं। 'मालिनी' उपन्यास है। आप अपने कटाक्ष काव्यों के लिऐ अधिक प्रसिद्ध है।

भीणाभाई रतनजी देसाई 'स्नेहरश्मि' (१९०३)—**कृतियाँ**—(कविता)—अर्घ्य, पनघट, (कहानी)—तूटेला तार, गाता असोपालव, 'स्वर्ग अने पृथ्वी'।

आपने लयमधुर ऊर्मिगीतों की रचना की है। 'एकोऽहं बहुस्यामि' आपका छंदोबद्ध श्रेष्ठ काव्य है। इस काव्य में अर्थ गौरव भी है और भाषा की गंभीरता भी। इनकी कृतियों पर रवीन्द्र-कविता-कला का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

सुन्दरजी गोकलदास बेटाई (१९०४)—**कृतियाँ**—(कविता)—ज्योति रेखा, इन्द्र धनु, विशेषांजलि, तुलसीदल, (विवेचन)—गुजराती साहित्य मां सॉनेट।

बम्बई में एल्फिस्टन कालेज में अध्यापन करते समय आपका परिचय नरसिंहराव से हुआ जो वहीं पर गुजराती के प्राध्यापक थे। कविवर नरसिंहराव की प्रेरणा से बेटाई जी की काव्यरचना की प्रवृत्ति वेगवान बनी। विचारों की उन्चता तथा भावनामयता इनकी कविता की विशेषता है। इनके काव्य का मुख्य विषय प्रकृति, प्रेम तथा परमात्मा हैं। ये एक आदर्शवादी कवि हैं। सागर-भवसागर पर भी इनकी कई कृतियाँ है जो काफी प्रसिद्ध हैं। इनकी कई कविताएँ प्राचीन भजन-शैली में रची गई हैं। पुत्र तथा पत्नी के प्रति इनकी करुण प्रशस्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

मनसुखलाल मगनलाल झवेरी (१९०७)—**कृतियाँ**—(कविता)—आराधना, अभिसार, फूलदोल, चन्द्रदूत; (आलोचना)—थोड़ा विवेचन लेखो, पर्येषण, गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन।

आधुनिक कवियों की अपेक्षा इनकी भाषा अधिक संस्कृत प्रचुर है। आपने गेय कविताएँ भी लिखी है और छंदोबद्ध भी, आत्मलक्षी भी लिखी हैं और परलक्षी भी। 'कुरुक्षेत्र' इनका एक उत्तम काव्य है।

समीक्षक मनसुखलाल का अध्ययन विशाल है और दृष्टि तलस्पर्शी। 'गुजराती साहित्यनुं रेखा दर्शन' आपका प्रौढ़ आलोचनात्मक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ लेखक की भाषा-शक्ति तथा मनन शक्ति का परिचायक है।

झवेरचन्द कालिदास मेघाणी—देखिए पृष्ठ ७९–८०

रामनारायण पाठक 'शेष' ,, ,, ८१–८२

उपसंहार—इधर कुछ वर्षों से गांधी युग की यथार्थवादी चिन्तन प्रधान अगेय कविता फिर से गेयता तथा ऊर्मिप्रधानता को अपना रही है। उपर्युक्त कवियों के उपरान्त राजेन्द्रशाह, निरंजन भगत, बालमुकुन्द दवे और नटवरलाल पंड्या 'उशनस' आदि काव्य-साहित्य के विकास में लीन है। किंतु गुजरात पंडित युग तथा गांधी युग

की जैसी समर्थ, कल्पनाप्रवण तथा उच्च कोटि की सरस कविता की प्रतीक्षा कर रहा है।

पाँच : नाटक

करीब सौ वर्षों से ही गुजराती में नाटकों का आरम्भ होता है। बंगाल की 'यात्रा', महाराष्ट्र की 'ललित' तथा उत्तर भारत की 'रामलीला' की तरह गुजरात में 'भवाई' नामक लोकनाट्य से जनता का मनोरंजन होता था। 'भवाई' में स्थूल हास्य तथा अशिष्टता की अधिकता के कारण शिष्ट जनता उससे दूर हटने लगी। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् रंगमंच, अंग्रेजी तथा संस्कृत नाटक के परिचय से गुजराती में नाट्य कला का आरम्भ हुआ। व्यावसायिक थिएटर कम्पनियाँ खुली। शालाओं में अवैतनिक रूप से नाट्य प्रयोग होने लगे। इसके साथ-साथ साहित्यिक नाटक भी लिखे जाने लगे। लेकिन दो-तीन नाटकों को छोड़कर बाकी साहित्यिक नाटकों का व्यावसायिक रंगमंच ने स्वागत नहीं किया। उसी तरह से जनता के मनबहलाव के लिए नाटक मंडलियों द्वारा लिखित नाटकों का साहित्यकारों ने भी सम्मान नहीं किया। दोनों में सहयोग के अभाव के कारण बहुत दिनों तक न तो रंगमंच को और न साहित्य को ही कोई महान नाटक मिला।

इतना होते हुए भी गुजराती में काफी नाटक लिखे गये हैं। भवाई, संस्कृत नाटक तथा अँग्रेजी नाटकों की प्रेरणा से आधुनिक नाटक का उदय हुआ। गुजराती नाटक को 'भवाई' से सामाजिक प्रश्न की चर्चा तथा हास्य प्राप्त हुआ; संस्कृत के नाटकों से नाट्य स्वरूप, संवाद पद्धति, श्लोकात्मक कविता तथा रस मिला और पश्चिम के नाटकों से नाट्य संघर्ष तथा करुणान्त नाटक प्रणाली मिली। किन्तु कुछ समय के बाद भवाई तथा संस्कृत के नाटकों का प्रभाव लुप्त होने लगा और पश्चिम के आधुनिक नाटकों की तरह ध्येय लक्षी, प्रश्नगर्भ, संवाद प्रधान, प्रसंग तथा क्रिया वेग से पूर्ण नाटकों की अधिक रचना होने लगी।

दलपतराम के 'लक्ष्मी' और 'मिथ्याभिमान' तथा नर्मद के 'रामजानकी दर्शन' से आधुनिक नाटकों का आरम्भ होता है। किन्तु नाट्य-कला की दृष्टि से उपर्युक्त कृतियाँ अपूर्ण है। रणछोड़भाई उदयराम के 'ललित दुःखदर्शक' तथा 'जयकुमारी विजय' से सफल नाट्य-कृतियों का शुभारंभ होता है। रणछोड़भाई नाटको के जनक माने जाते है। इतिहास तथा सामाजिक जीवन से कथावस्तु लेकर गुजराती नाटको की रचना होती आ रही है।

मणिलाल नभुभाई ने 'कान्ता' नाटक में पाश्चात्य तथा भारतीय नाट्य-शैली का समन्वय किया किन्तु रमणभाई ने 'राई नो पर्वत' में विशेष रूप से पाश्चात्य

शैली को प्रधानता दी है और कविवर नानालाल के नाटकों में काव्य-तत्त्व की प्रधानता है।

गांधी युग में श्री मुन्शीजी, रमणलाल देसाई, चन्द्रवदन मेहता, बटुभाई उमरवाडिया आदि लेखक नाटक साहित्य-भंडार को भरते आ रहे हैं। एकांकी नाटिकाओं की रचना विशेष रूप से हो रही है। पाश्चात्य नाटकों का रूपान्तर भी चालू है।

छ : ललितेतर साहित्य या चिन्तनात्मक साहित्य

(क) आलोचना—अँग्रेजी तथा संस्कृत साहित्य के अध्ययन से समीक्षा साहित्य का आरम्भ हुआ। विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में गुजराती-शिक्षा की व्यवस्था होने के कारण, दैनिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं में एक समीक्षा-स्तम्भ होने के कारण इस प्रकार के साहित्य का अच्छा विकास हुआ है।

यद्यपि विवेचनात्मक प्रवृत्ति का आरम्भ तो नर्मद से ही हो जाता है किन्तु प्रौढ़ तथा व्यवस्थित समीक्षा-ग्रंथों की परम्परा नवलराम से आरम्भ होती है। सर्व-प्रथम नवलराम ने ही तटस्थता, गम्भीर अध्ययन, मननशीलता तथा निर्णायक शक्ति आदि एक सफल आलोचक की विशेषताओं का परिचय दिया है। पंडित युग तो एक प्रकार से विवेचकों का ही युग रहा है। गोवर्धनराम, नरसिंहराव द्विवेटिया, रमणभाई नीलकंठ, आनन्दशंकर ध्रुव, केशव हर्षद ध्रुव आदि ने समीक्षा साहित्य को समृद्ध किया। संस्कृत-परम्परा की अलंकार तथा रस दर्शन कराने वाली विवेचना की अपेक्षा कला तथा जीवन की मीमासा करने वाली पाश्चात्य ढंग की आलोचना शैली का अधिक विकास हुआ है। कला, कला के सिद्धान्त, साहित्य के स्वरूप, भाषा-शैली आदि पर सूक्ष्म विवेचना हुई है। इसके साथ-साथ प्राचीन तथा मध्यका-लीन साहित्य का संशोधन, सम्पादन तथा विवेचन भी हुआ है। गांधी युग मे मुन्शी, रामनारायण पाठक, झवेरचन्द मेघाणी, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, विजयराय वैद्य, विश्वनाथ भट्ट, अनन्तराय रावल, सुन्दरम्, उमाशंकर जोशी, मनसुखलाल झवेरी आदि ने नाना रूपों में आलोचना साहित्य के भण्डार को भरा है।

गुजराती साहित्य का इतिहास भी लिखने का सफल प्रयत्न किया गया है। कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी ने 'गुजराती साहित्यना मार्ग सूचक स्तम्भो' में गुजराती साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया है। 'गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर' में श्री मुंशीजी ने गुजरात की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की भूमिका में साहित्य के उदय तथा विकास को दिखाया है। गुजराती के विद्वान समीक्षक श्री विजयराय वैद्य का 'गुजराती साहित्यनी रूप रेखा' रंगदर्शी तथा अलंकार प्रधान

शैली में लिखा गया महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में लेखक की मननशीलता तथा निर्णय-शक्ति का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर और कई छोटे-मोटे ग्रंथ लिखे गये हैं।

(ख) निबन्ध—अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् देश में कुछ नयी-नयी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। इन नवीन परिस्थितियों से सम्बन्धित विचारात्मक लेखों से ही निबन्ध-कला का आरम्भ होता है। नर्मद ने अपने निबंधों में अपने सुधारवादी दृष्टि-कोणों का प्रचार किया है। इस प्रकार सुधारक युग के निबंधों में सुधार का प्रचार ही अधिक है; पांडित्य तथा निबंध-कला का अभाव है। इनमें से एक की पूर्ति तो पंडित युग में हुई। मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, गोवर्धनराम, नरसिंह राव, रमणभाई, आनन्दशंकर ध्रुव आदि ने पांडित्य पूर्ण विस्तृत निबंध लिखा है। इन लेखकों ने धर्म, तत्त्वज्ञान, तथा मानव जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को अपने निबंध का विषय बनाया है। किन्तु पंडित युग के निबंधों की सरसता तथा कला चिन्तन के भार से दबी ही रही। गांधी युग ने इस कृत्रिम आवरण को हटाकर सरल, निर्मल तथा संक्षिप्त शैली वाले निबंधों को प्रस्तुत किया।

गांधी युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार स्वयं गांधीजी ही थे। अपनी राष्ट्र व्यापी प्रवृत्तियों के कारण गांधीजी ने जीवन की प्रत्येक समस्याओं पर उदारता तथा गम्भीरता से चिंतन किया और जनता को मंगलमय मार्ग दिखाया। 'नव जीवन' और 'हरिजन' पत्रों के सम्पादक तथा प्रमुख लेखक गांधीजी ही थे। इसलिये गांधीजी को प्रति दिन बहुत कुछ सोचना और लिखना पड़ता था। उन्हे कोटि-कोटि जनता के विचारों को शक्तिशाली बनाना था, मन को संयमी तथा उत्साही बनाना था। विविध विषयों पर लिखे गए गांधीजी के इन निबन्धों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। गांधीजी एक साहित्यकार के रूप में नहीं लिखते थे बल्कि जन-मन को प्रभावित करने वाले लोकनायक के रूप में लिखते थे। इसलिए उनकी भाषा में चमक-दमक नहीं है, घुमाव नही है, मिथ्या पांडित्य-प्रदर्शन नहीं है। इस महात्मा के ममता से पूर्ण मन ने विवेक के प्रकाश में नाना कठिनाइयों में उलझे हुए मानव-जीवन और जगत् को देखा और फिर अपने निबंधों के द्वारा जनता को भी दिखाने का प्रयत्न किया। इसलिए इनके निबंध छोटे होते हुए भी प्रेरक हैं, विचारात्मक होते हुए भी सरल हैं और बुद्धि तथा मन को सीधे स्पर्श करने वाले हैं। इन निबंधो को पढ़कर पाठक लेखक के साथ आत्मीयता का अनुभव करता है।

गांधीजी की इस शैली ने गुजरात के समकालीन लेखकों को प्रभावित किया। काका कालेलकर के निबंधों में पांडित्य तथा रसिकता का समन्वय है। मशरूवाला के निबंधों में चिन्तन तत्व की प्रधानता है। सर्जक साहित्यकारों में से श्री मुंशीजी,

रमणलाल देसाई, झवेरचन्द मेघाणी, 'धूमकेतु' तथा उमाशंकर जोशी आदि ने निबंध-साहित्य को समृद्ध किया तथा निबंध-कला का विकास किया।

विचार प्रधान निबंधों के साथ-साथ हास्यरस प्रधान निबंध भी लिखे गए हैं। नवलराम, रमणभाई नीलकंठ आदि पंडित युग के निबंध लेखक थे। रमणभाई के बाद ज्योतीन्द्र दवे गुजरात के सब से बड़े हास्य लेखक हैं। यह असाधारण बुद्धि चापल्यवाला लेखक किसी भी वस्तु को हास्य में बदल देने की क्षमता रखता है। गगनविहारी मेहता, चीनू भाई पटवा और वकुल त्रिपाठी आदि हास्य-निबंध लेखक हैं।

(ग) **आत्मकथा**—विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने आत्मकथाएँ लिखी हैं। सबसे पहले नर्मद ने 'मारी हकीकत' में अपने जीवन का सरल तथा निष्कपट रूप से परिचय दिया है। महात्मा गांधी की 'आत्मकथा' तो विश्व विख्यात ही है। श्री मुंशीजी, रमणलाल देसाई, धूमकेतु, चन्द्रवदन मेहता आदि साहित्यकारों ने आत्मकथाएँ लिखकर साहित्य के इस नए अङ्ग को पुष्ट किया है। गुजरात के एक वयोवृद्ध नेता इन्दुलाल याज्ञनिक की आत्मकथा ने गुजरात में महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

अन्य साहित्यिक प्रकाशन

राष्ट्रीयता	डा० गुलाबराय	५·००
सांस्कृतिक जीवन	,,	२·००
साहित्य सरोवर	डा० गोपीनाथ तिवारी	८·००
मेरे निबन्ध	डा० गुलाबराय	५·००
विज्ञान वाटिका	भारत भूषण त्यागी	२·५०
हिन्दी काव्य में छायावाद	दीनानाथ 'शरण'	५·००
हिन्दी आलोचना की रूपरेखा	फूलचन्द्र पांडे	३·५०
हिन्दी साहित्य में निबन्ध	डा० ब्रह्मदत्त शर्मा	२·५०
हिन्दी का मान मंदिर	डा० सत्येन्द्र	२·००
सांस्कृतिक प्रश्न	जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'	२·५०
मुझे आपसे कुछ कहना है	रावी	२·००
हमारी भी कहानी है	राजेश्वर गुरु	२·००
मोरी धरती मैया	श्रीचन्द्र जैन	२·५०
सुखी मानव	डा० राजेश्वरप्रसाद	१·५०
भाग्य निर्माता	,, ,,	२·००
अंग्रेजी साहित्य परिचय	दयाशंकर शर्मा विद्याशंकर शर्मा	४·००
मराठी साहित्य का इतिहास	ना० ब० गोडबोले	३·००

प्रकाशक

गयाप्रसाद एण्ड संस : आगरा ।

पद्म प्रिण्टर, नूरी दरवाजा, आगरा में मुद्रित